जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2533

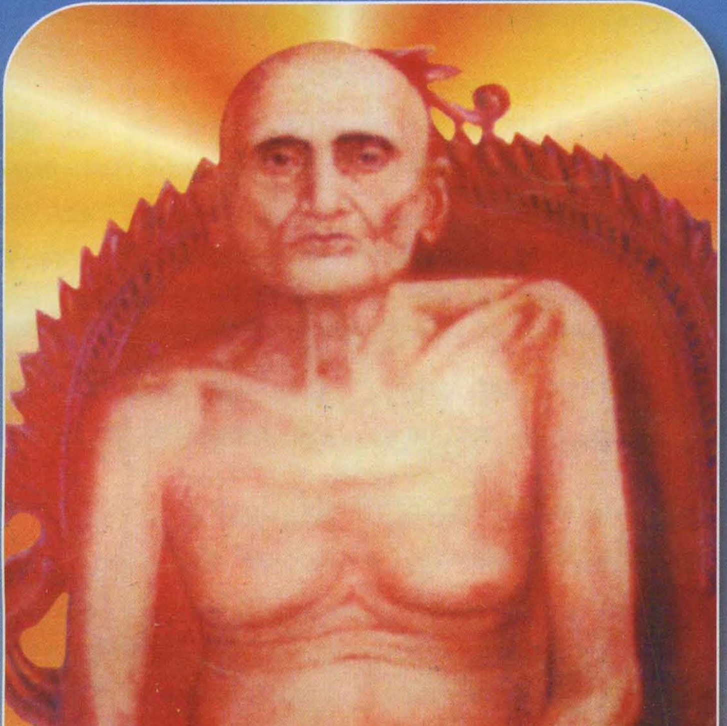

बीसवीं शती के आद्य
आचार्य श्री शान्तिसागर जी

पौष, वि.सं. 2063 दिसम्बर, 2006

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल्य 10/-

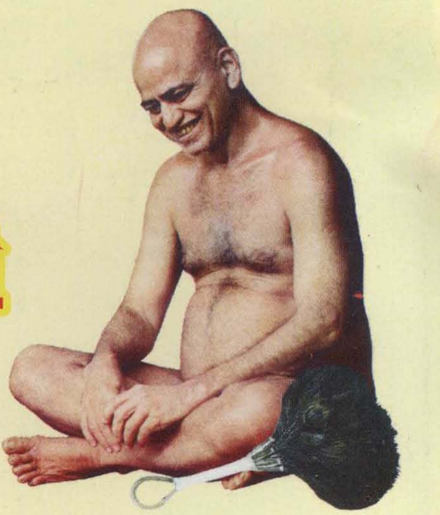

आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

37

सब में वह ना योग्यता, मिले न सब को मोक्ष।
बीज सीझते सब कहाँ, जैसे टर्रा मोठ॥

38

सब गुण मिलना चाहते, अन्धकार का नाश।
मुक्ति स्वयं आ उतरती, देख दया का वास॥

39

व्यर्थ नहीं वह साधना, जिसमें नहीं अनर्थ।
भले मोक्ष हो देर से, दूर रहे अघ गर्त॥

40

जलेबियाँ ज्यों चासनी, में सनती आमूल।
दया-धर्म में तुम सनो, नहीं पाप में भूल॥

41

संग्रह पर का तब बने, जब हो मूर्च्छा-भाव।
प्रभाव शनि का क्यों पड़े? मुनि में मोहाभाव॥

42

किस-किस का कर्त्ता बनूँ, किस-किस का मैं कार्य।
किस-किस का कारण बनूँ, यह सब क्यों कर आर्य?॥

43

पर का कर्त्ता मैं नहीं, मैं क्यों पर का कार्य।
कर्त्ता कारण कार्य हूँ, मैं निज का अनिवार्य॥

44

लघु-कंकर भी डूबता, तिरे काष्ठ भी स्थूल।
''क्यों'' मत पूछो, तर्क से स्वभाव रहता दूर॥

45

फूल-फलों से ज्यों लदें, घनी छाँव के वृक्ष।
शरणागत को शरण दे, श्रमणों के अध्यक्ष॥

46

थकता, रुकता कब कहाँ, ध्रुव में नदी प्रवाह।
आह वाह परवाह बिन, चले सूरि शिव-राह॥

47

बूँद-बूँद के मिलन से, जल में गति आ जाय।
सरिता बन सागर मिले, सागर बूँद समाय॥

48

कंचन पावन आज पर, कल खानों में वास।
सुनो अपावन चिर रहा, हम सब का इतिहास॥

49

किस किस को रवि देखता, पूछें जग के लोग।
जब-जब देखूँ देखता, रवि तो मेरी ओर॥

50

सत्कार्यों का कार्य है, शान्ति मिले सत्कार।
दुष्कार्यों का कार्य है, दुस्सह दुख दुत्कार॥

51

बनो तपस्वी तप करो, करो न ढीला शील।
भू-नभ मण्डल जब तपे, बरसे मेघा नीर॥

52

घुट-घुट कर क्यों जी रहा, लुट-लुट कर क्यों दीन?
अन्तर्घट में हो जरा, सिमट-सिमट कर लीन॥

53

बाहर श्रीफल कठिन ज्यों, भीतर से नवनीत।
जिन-शासक आचार्य को, विनमूँ, नमूँ विनीत॥

54

सन्त पुरुष से राग भी, शीघ्र मिटाता पाप।
उष्ण नीर भी आग को, क्या न बुझाता आप?॥

'सर्वोदयशतक' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

दिसम्बर 2006 मासिक वर्ष 5, अङ्क 12

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ **आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे** — आ.पृ. 2
◆ **आचार्य श्री विद्यासागर जी के प्रवचनांश** — आ.पृ. 3
◆ **स्तवन** : मुनि श्री योगसागर जी — आ.पृ. 4
- श्री विमलनाथ-स्तवन
- श्री अनन्तनाथ-स्तुति

◆ **सम्पादकीय** : दिगम्बर जैन परम्परा को मिटाने की सलाह — 2
◆ गाँधी जी और चम्पतराय जी के पारस्परिक पत्र — 9
◆ **लेख**
- दिगम्बरत्व का महत्त्व : स्व. डॉ. ज्योतिप्रसाद जी जैन — 15
- शुभभाव कर्मक्षय का कारण : मुनिश्री प्रणम्यसागर जी — 17
- समाधिमरण : तुलना एवं समीक्षा : प्रो. डॉ. सागरमल जैन — 19
- मिथ्याप्रचारकों से सावधान : पं. पुलक गोयल शास्त्री — 24
- सन्तों की आड़ में आत्मघाती खेल न खेलें : डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल — 27
- आओ एक अभियान चलाएँ : शैलेष जैन शास्त्री — 29

◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 31
◆ **संस्मरण**
- उपाधि — 18
- निर्मलता — 18
- अभिशाप बना वरदान — 26

◆ **समाचार** — 28, 30

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

दिगम्बर जैन परम्परा को मिटाने की सलाह

वर्तमान समय में कुछ आधुनिक शिक्षा-प्राप्त नई सोच के दिगम्बर जैन भी ऐसे हैं, जो दिगम्बर जैन मुनियों का नग्न रहना उचित नहीं मानते। इसके पीछे उनका प्रमुख तर्क है 'आज की परिस्थितियाँ', 'बदली हुई परिस्थितियाँ', 'वर्तमान क्षेत्र और काल की परिस्थितियाँ।' वे मानते हैं कि आज की बदली हुई परिस्थतियों में दिगम्बर जैन मुनियों को कम से कम एक वस्त्र पहिनकर बस्तियों में आना चाहिए। इसके समर्थन में वे पत्रिकाओं में लेख लिखकर और महात्मा गाँधी जैसे प्रसिद्ध पुरुष के विचार प्रस्तुत कर एक वातावरण सा निर्मित कर रहे हैं।

३१ मई १९३१ की 'नवजीवन' नामक पत्रिका में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने दिगम्बरत्व के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था कि दिगम्बर जैन मुनियों को नग्नावस्था में शहर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। 'नवजीवन' में प्रकाशित ये विचार सारनाथ के दिगम्बरजैन चिन्तक-लेखक श्री जमनालाल जी ने 'शोधादर्श' में प्रकाशनार्थ भेजे थे, जिन्हें सम्पादक ने "वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामयिक और समीचीन प्रतीत होते हैं" इस टिप्पणी के साथ 'शोधादर्श'-५५ (मार्च २००५ ई०) में प्रकाशित किया था। इससे प्रेरित और प्रोत्साहित होकर दिगम्बर आम्नाय के आधुनिक विद्वान् डॉ० अनंग प्रद्युम्न कुमार, श्री जमनालाल जैन, सुश्री लीना विनायकिया तथा डॉ० अनिलकुमार जैन ने लेख लिखकर गाँधीजी के उक्त विचार का समर्थन किया है। वे लिखते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए दिगम्बरजैन मुनियों को एक वस्त्र पहनकर विहार करना चाहिए। इनके लेख शोधादर्श-५६ (जुलाई २००५) तथा शोधादर्श-५८ (मार्च २००६) में प्रकाशित हुए हैं। इन सबके दिगम्बरजैन होने का उल्लेख डॉ० शशिकान्त जी ने किया है। (शोधादर्श-५९ / जुलाई २००६ / पृ. ५३)।

डॉ० अनंग प्रद्युम्न कुमार लिखते हैं- "मेरे विचार से दिगम्बर मुनियों को पुरानी परम्परा से मुक्त होकर नये सन्दर्भो के अनुरूप चर्या में वांछित संशोधन करना चाहिए। अब तक के दीक्षित दिगम्बर-वेषी मुनि, आचार्य जिनकल्पी मुनि होकर मोक्ष-साधना के लक्ष्य से या तो स्थानकवासी होकर किसी एक जगह ठहर जायँ या मुनियों की नयी पौध के साथ स्थविरकल्पी होकर आहार-विहार के समय एक वस्त्र का चोगा धारण करें तो अच्छा है। यह लोचशीलता वर्तमान जैन संघ के लोकोपयोगी भविष्य के लिए बहुत जरूरी है।" (शोधादर्श-५६ / पृ.२२)।

डॉ० अनिल कुमार जैन ने अपने विचार इन शब्दों में प्रकट किये हैं- "यहाँ एक बात विचारणीय है कि देश और काल की परिस्थिति देखते हुए क्या दिगम्बर साधुओं को भी नग्न रहते हुए विहार करना उचित है? --- क्या आज की चकाचौंध एवं ग्लैमरयुक्त (मोहकता से भरी) दुनिया में यह उचित है? इस मुद्दे पर गंभीरतापूर्वक विचार होना चाहिए। पहले नग्न साधु जंगलों में रहते थे, लेकिन आज जंगलों का अभाव है तथा साधु अब बस्तियों में रहते हैं, बड़े-बड़े शहरों तथा महानगरों में रहते हैं। इन महानगरों में पश्चिमी सभ्यता का खुला प्रदर्शन भी होता है। मिस वर्ल्ड प्रतियोगिता, कैटरॉक तथा फैशन-शो आये दिन के कार्यक्रम हैं। टेलीविजन पर कामुकतायुक्त धारावाहिकों का प्रसारण होता ही रहता है। इस प्रकार की परिस्थिति में साधुओं में भी कदाचित् दोष लग सकता है। और यदि हम यह मानें कि ये साधु काम, क्रोध से मुक्त हो गये हैं तथा ये सब परिस्थितियाँ उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं, तब भी हमें इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि चलो माना कि ये साधु काम-क्रोध से मुक्त हो गये हैं, लेकिन आज के ग्लैमरयुक्त संसार की आम जनता तो और अधिक उसमें लिप्त हो गयी है। उनके विकारभाव तो हैं ही। शहरों और महानगरों में नग्न साधु भ्रमण कर आम जनता के विकारभावों को उत्तेजित करने में माध्यम क्यों बनें? यदि उन्हें नग्न रहना है, तो शहरों तथा महानगरों में भ्रमण बन्द करना चाहिए। और यदि उन्हें इस प्रकार का भ्रमण करना है, तो मात्र एलक अवस्था तक ही त्याग करना चाहिए।" (शोधादर्श -५८ / मार्च २००६ ई. / पृ. ३४)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि को दुनिया का दास बनने की सलाह

ये विचार दिगम्बरजैन-कर्मसिद्धान्त की गहरी समझ से रहित मस्तिष्क की उपज हैं। जैन मुनि का नग्नत्व कोई शरीर की शोभा बढ़ानेवाला या शरीर को सुख पहुँचानेवाला या रोटी कमानेवाला अथवा लोगों को अपना नग्न शरीर दिखाने का शौक पूरा करने वाला उपाय नहीं है, जिसे जब चाहे तब अपना लिया जाय और जब चाहे तब छोड़ दिया जाय। यह तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट मोक्ष का उपाय है। यह कर्मसिद्धान्त से जुड़ा हुआ है। यह एक अत्यन्त प्राचीन, प्राग्वैदिक भारतीय फिलासॉफी, भारतीय विश्वास का विषय है। यह एक बड़ी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। वह फिलासॉफी, वह विश्वास, वह मनोविज्ञान इस प्रकार है : आत्मा शरीर से भिन्न है। शरीर से राग होता है, तो शरीर को सुख पहुँचानेवाले पदार्थों से राग होता है। उन पदार्थों के पाने के लिए मनुष्य हिंसादि पाप करता है, उनसे कर्मों के बन्धन में बँधता है, कर्मबन्धन के कारण बार-बार जन्म लेता है और बार-बार मरता है। इस जन्म-मरण के दुखद चक्र से सदा के लिए मुक्त होना और अक्षय, अतीन्द्रिय आत्मसुख की अवस्था को प्राप्त करना मोक्ष है। मोक्ष के लिए कर्मबन्धन से मुक्त होना आवश्यक है, उसके लिए हिंसादि पापों का परित्याग जरूरी है, उसके लिए शारीरिक सुख के साधनभूत वस्त्रादि पदार्थों के ग्रहण का अर्थात् परिग्रह का त्याग जरूरी है, जो उन पदार्थों के प्रति वीतरागभाव से फलित होता है। इस प्रकार नग्नत्व कर्मबन्धनकारी हिंसादिपापों के जनक वस्त्रादिपरिग्रह के त्याग का प्रमाण या लक्षण है। यह तब तक आवश्यक है, जब तक कर्मबन्धन से मुक्ति का लक्ष्य सिद्ध नहीं हो जाता।

इस स्थिति में यदि उपर्युक्त विचारकों की सलाह के अनुसार मुनि एक वस्त्र पहनना शुरू कर दें, तो कर्मबन्धन से मुक्ति की साधना बीच में ही भंग हो जायेगी और परिग्रह में वृद्धि की प्रक्रिया शुरू हो जायेगी, क्योंकि एक वस्त्र स्वीकार कर लेने पर दूसरे दिन के लिए धुल हुए दूसरे वस्त्र की जरूरत होगी। फिर उनको धोने-सुखाने के लिए साबुन-पानी, छन्ना, वर्तन, रस्सी, कील आदि की, तथा वस्त्र के फट जाने पर उसे सीलने के लिए सुई-धागे-कैंची की आवश्यकता उत्पन्न होगी। फिर एक वस्त्र स्वीकार कर लेने पर शीतादि-परीषहों से बचने के लिए चादर, कम्बल, दरी आदि रखना भी सिद्धान्त के विरुद्ध सिद्ध नहीं होगा। उन्हें संयम का उपकरण मान लिया जायेगा। तब इन सब को रखने के लिए बड़े-बड़े बैंगों या बोरी की जरूरत पड़ेगी। किन्तु पिच्छी-कमण्डलु के साथ बैगों या बोरी को कन्धे पर लटका कर विहार करना जवान मुनियों के लिए भी संभव नहीं होगा, बूढ़े मुनियों की तो बात ही दूर। इस स्थिति में नौकर रखना होगा और उसकी तनख्वाह की व्यवस्था करनी होगी। अथवा किसी एक स्थान में स्थायीरूप से निवास करने के लिए विवश होना पड़ेगा। इसके लिए मकान की जरूरत होगी। फिर एक स्थान में नियतवास करने लगने से, वहाँ के लोग रोज-रोज आहार देने में आना-कानी करेंगे। आहार न मिलने से आर्त्तभाव उत्पन्न होगा, जिससे नरकगति बँधेगी। आहार की पराधीनता से छुटकारा पाने के लिए स्वनिवास में ही भोजन की व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए सेठों से दान माँगा जायेगा। सेठ दान देंगे, तो मुनियों को उनकी चाटुकारिता करनी पड़ेगी। इस तरह मुनि सेठों के आज्ञाकारी सेवक बन जायेंगे और सेठ उनके स्वामी। परम नीतिज्ञ भर्तृहरि ने कहा भी है-

आशाया ये दासास्ते दासा सर्वलोकस्य।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः ॥

अर्थात् जो इच्छाओं के दास होते हैं, वे सारी दुनिया के दास बन जाते हैं, लेकिन जो इच्छा को अपनी दासी बना लेते हैं, सारी दुनिया उनकी दासी बन जाती है।

किन्तु नग्नत्व की अवस्था समस्त इच्छाओं के विसर्जन की अवस्था है, इसलिए उसमें मुनि शहंशाह की अवस्था को प्राप्त हो जाता है। किसी कवि के निम्नलिखित वचन इस महान् मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति करते हैं-

चाह गई चिन्ता मिटी मनवा बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए वे ही शाहंशाह ॥

तात्पर्य यह कि छोटा से छोटा भी वस्त्र धारण करने पर मोक्षमार्ग की बलि चढ़ जायेगी और मुनि आर्त्त-रौद्रभावों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की उत्पत्ति के कारणभूत परिग्रह की चाह में अपने को संसार के मकड़जाल में फँसा हुआ पायेगा। अतः **नग्नत्व ही** संसार की पराधीनता और तज्जन्य आर्त्तरौद्रभावों से छुटकारा पाने का अमोघ उपाय है। इससे सिद्ध है कि नग्नत्व **की** जड़ें वीतरागभाव में हैं और वीतरागभाव की जड़ें नग्नत्व में हैं और चूँकि ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं, इसलिए मोक्ष **की** जड़ें इन दोनों में हैं।

मोक्ष से वंचित करने की सलाह

इस तीर्थंकरप्रणीत कर्मसिद्धान्त या बन्धमोक्ष-पद्धति के परिप्रेक्ष्य में दिगम्बरजैन मुनि को वस्त्र पहनने की सलाह मनुष्य को मोक्ष से वंचित करने की सलाह है, तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट अहिंसा-अपरिग्रह-अनेकान्त-प्रधान, लोककल्याणकारी अत्यन्त प्राचीन दिगम्बर जैनधर्म और दर्शन की परम्परा को कब्र में दफनाने की सलाह है और दिगम्बरों को श्वेताम्बर, रक्ताम्बर या पीताम्बर बनने की सलाह है। वर्तमानकाल की परिस्थितियों में दिगम्बरजैन मुनियों के नग्न रहने को अनुचित बतलाना तीर्थंकरों के उपदेश को अव्यावहारिक और असामाजिक बतलाना है, ऋषभादि तीर्थंकरों, कुन्दकुन्दादि प्राचीन आचार्यों और विद्यासागर-विद्यानन्दादि वर्तमान आचार्यों की बुद्धि को अपनी बुद्धि से हीन मानना है।

देश और काल की परिस्थितियों के अनुसार धार्मिक सिद्धान्तों और आचार में परिवर्तन की सलाह तभी कार्यकर हो सकती है, जब तीर्थंकरों ने जिस अवस्था की प्राप्ति को मोक्ष कहा है, उसे अमान्य कर किसी अन्य अवस्था की प्राप्ति को मोक्ष मान लिया जाय। क्योंकि परिवर्तित सिद्धान्त और आचार से उस मोक्षावस्था की प्राप्ति तो हो नहीं सकती, जिसको तीर्थंकरों ने मोक्षावस्था कहा है। जैसा साधन होता है, वैसे ही साध्य की प्राप्ति होती है, यह वैज्ञानिक नियम है। और जब-जब देश-काल की परिस्थितियों में परिवर्तन होगा, तब-तब धार्मिक सिद्धान्तों और आचार में परिवर्तन करते रहना पड़ेगा, अतः तब-तब उस परिवर्तित आचार से प्राप्त हो सकने योग्य नयी-नयी मोक्षावस्था की भी कल्पना आवश्यक होगी। इस प्रकार समय-समय पर नई-नई अवस्था को मोक्षावस्था मानते रहने पर मोक्षमात्र काल्पनिक सिद्ध होगा। तब **'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'** की चार्वाकीय पशुसंस्कृति ही सर्वव्यापी हो जायेगी।

परिवर्तित देश-काल से हानि की मिथ्या कल्पना

'वर्तमान काल में मुनियों का नग्न रहना उचित नहीं है' ऐसा कहनेवाले मानते हैं कि अतीतकाल में उचित था। यहाँ प्रश्न उठता है कि अतीतकाल से वर्तमानकाल में क्या फर्क पड़ गया है? इसकी तसवीर दिगम्बर जैन विद्वान् डॉ० अनिल कुमार जैन ने अपने पूर्वोद्धृत लेख में खींची है। वे लिखते हैं कि आज के ''महानगरों में पश्चिमी सभ्यता का खुला प्रदर्शन भी होता है। मिस वर्ल्ड प्रतियोगिता, कैट रॉक तथा फैशन-शो, आये दिन के कार्यक्रम हैं। टेलीविजन पर कामुकतायुक्त धारावाहिकों का प्रसारण होता ही रहता है। इस प्रकार की परिस्थिति में साधुओं में भी कदाचित् दोष लग सकता है।'' (शोधादर्श-५८ / पृ. ३४)।

मैं डॉ० अनिलकुमार जी से जानना चाहता हूँ कि क्या मिस वर्ल्ड प्रतियोगिता, कैट रॉक, फैशन-शो आदि का प्रदर्शन महानगरों की सड़कों पर होता है? या कामुकतापूर्ण धारावाहिकों का प्रसारण करनेवाले टेलीविजन सड़कों पर लगे रहते हैं, जिससे महानगरों में विहार करनेवाले मुनियों की उन पर नजर पड़े? और क्या ईर्यासमिति का पालन करनेवाले (चार हाथ जमीन को देखकर चलनेवाले) मुनि चलते-चलते इन दृश्यों को देख-समझ सकते हैं? उन्हें देखने के लिए मुनियों को सड़क पर रुकना होगा और यदि टेलीवेजन बिजली के खंभों या वृक्षों की शाखाओं पर लटक रहे हों, तो आँखें ऊपर करनी होंगी। क्या डॉ० अनिलकुमार जी ने किसी दिगम्बरजैन मुनि को सड़क पर रुककर टेलीविजन के किसी दृश्य को देखते हुए देखा है? यदि नहीं, तो परिवर्तित देश-काल से हानि का ऐसा मिथ्या प्ररूपण क्या एक ईमानदार लेखक के लिए उचित है? उपर्युक्त दृश्य तो क्या, कामविकार उत्पन्न करने के लिए सड़क पर चलती किसी स्त्री के दर्शन ही काफी हैं। और सड़क पर चलती किसी स्त्री के दर्शन से क्या नग्न मुनि के ही मन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कामविकार उत्पन्न हो सकता है, वस्त्रधारियों के मन में नहीं? यदि वस्त्रधारियों के मन में भी हो सकता है, तो काम विकार की उत्पत्ति में मुनि की नग्नता दोषी कैसे हो सकती है? नहीं हो सकती।

डॉ० अनिलकुमार जी ने वर्तमान की परिवर्तित परिस्थिति का दूसरा उदाहरण देते हुए लिखा है कि "आज के ग्लैमरयुक्त संसार की आम जनता तो और अधिक उसमें (काम में) लिप्त हो गयी है। उनके विकारभाव तो हैं ही। शहरों और महानगरों में नग्न साधु भ्रमण कर आम जनता के विकारभावों को उत्तेजित करने में माध्यम क्यों बनें?" (शोधादर्श-५८ / पृ. ३४)।

इस सन्दर्भ में भी मैं डॉ० अनिलकुमार जी से जानना चाहता हूँ कि दिगम्बरजैन समाज की माताएँ, बहनें और बहू-बेटियाँ दिगम्बर मुनियों को आहारदान करती हैं, तब क्या उनके मन में कामविकार उद्दीप्त होता है? डॉ० अनिलकुमार जी भी दिगम्बर जैन हैं, उनके परिवार की और रिश्ते की महिलाओं ने भी दिगम्बर मुनि को आहारदान किया होगा, उनसे उन्हें अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करानी चाहिए। आहारदान करनेवाली महिलाओं का अनुभव डॉ० अनिलकुमार जी के कथन के सर्वथा विपरीत है, यह इसी से सिद्ध है कि यदि अनिलकुमार जी का कथन सत्य होता, तो नब्बे प्रतिशत जैन महिलाओं ने दिगम्बर मुनियों के दर्शन करना और आहारदान करना छोड़ दिया होता, बल्कि जैनधर्म ही छोड़ दिया होता और जैनधर्म कभी का लुप्त हो गया होता, क्योंकि अपने पातिव्रत धर्म को भंग कर पापकर्म के बन्धन में बँधने के लिए सभी महिलाएँ तैयार नहीं हो सकतीं। किन्तु जैनधर्म आज तक अक्षुण्ण है और इसके अनुयायियों की संख्या में वृद्धि हुई है। अनेक धनसम्पन्न सुशिक्षित श्वेताम्बरजैन परिवार परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के अनुयायी बन गये हैं और उनकी अत्यन्त प्रतिभाशाली, उच्चशिक्षाप्राप्त पुत्रियाँ आचार्यश्री से आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत लेकर धर्मसाधना करती हुईं आर्यिकादीक्षा की प्रतीक्षा कर रही हैं। वे आचार्यश्री तथा संघस्थ मुनियों के दर्शन-पूजन करती हैं, उन्हें आहार देती हैं और उनके मन की पवित्रता के दर्शन कोई भी कर सकता है। यदि डॉ० अनिलकुमार जी का कथन सत्य होता, तो वे श्वेताम्बर कन्याएँ अपने सवस्त्र गुरुओं को छोड़कर दिगम्बरगुरु की शरण में न आतीं। और भी अनेक जैनेतर परिवार दिगम्बर जैन मुनियों के शिष्य बने हैं। हजारों वर्ष प्राचीन, प्राग्वैदिक दिगम्बर जैनधर्म का आज तक अक्षुण्ण रहना और जैनधर्मावलम्बियों की संख्या में वृद्धि होना, इस बात का सबूत है कि डॉ० अनिलकुमार जी की धारणा सर्वथा मिथ्या है।

कामवासना के उद्दीपन का मनोविज्ञान

स्त्री-पुरुष में एक-दूसरे के प्रति कामात्मक आकर्षण उत्पन्न होना स्वाभाविक प्रवृत्ति (Instinct) है। यह धार्मिक और सामाजिक संस्कारों एवं अनुशासन से नियंत्रित होने के कारण धर्मप्राण स्त्रियों में पति के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुष के प्रति प्रवृत्त नहीं होती। कामात्मक आकर्षण का केन्द्र मुख्यरूप से मुख होता है। सर्व प्रथम मुख का सौन्दर्य तत्पश्चात् सुगठित-सुडौल देहयष्टि कामात्मक आकर्षण उत्पन्न करती है। यदि मुख कुरूप होता है, तो न तो सुगठित देहयष्टि आकर्षण पैदा कर पाती है, न शरीर का कोई अन्य अंग। वे सब बीभत्स लगने लगते हैं।

मुख का सौन्दर्य ही कामात्मक आकर्षण का केन्द्र होता है, यह सम्पूर्ण मानवसमाज द्वारा स्वीकृत है। इसीलिए परस्त्रियों के प्रति पुरुषों के कामात्मक आकर्षण को रोकने के लिए घूँघट और बुरके की प्रथा प्रचलित की गयी। इसी प्रकार स्त्रियों के लिए परपुरुष के दिखाई देने पर आँखें नीची कर लेने की मर्यादा बनायी गयी। भद्र स्त्रियाँ ऐसा ही करती हैं। परपुरुष के सामने आ जाने पर वे अपनी दृष्टि या तो नीचे कर लेती हैं, या दायें-वायें घुमा लेती हैं। जिन पुरुषों से उन्हें बात करना आवश्यक हो जाता है, उनकी तरफ वे देखती हैं, किन्तु सतत दृष्टि मिलाकर बात नहीं करतीं।

इस मनोवैज्ञानिक सत्य पर दृष्टिपात करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नग्न मुनि को देखकर किसी स्त्री में उनके प्रति कामात्मक आकर्षण तभी उत्पन्न हो सकता है, जब उनका मुख सुन्दर हो और देहयष्टि भी सुगठित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और संस्कारित हो। यदि ऐसा नहीं है, तो उनका गुह्यांग दृष्टिगोचर होने पर भी कामोद्दीपन नहीं हो सकता। यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि नग्न शरीर शोभायमान नहीं होता, वह अशोभनीय लगता है, इसलिए स्त्री और पुरुष शरीर को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करते हैं। स्त्रियों को तो सोलह शृंगार करना पड़ता है। और आजकल तो ब्यूटी-पार्लर में जाये बिना उनका सौन्दर्य निखर नहीं पाता। यत: नग्न शरीर स्वभावत: शोभनीय नहीं लगता और स्नान, संस्कार आदि न करने से मुनियों का शरीर मलिन हो जाता है, दाँत भी पीले हो जाते हैं, केशलोच करने से सिर और दाढ़ी के बाल भी बेतरतीब उगते हैं, इससे उनके शरीर की अशोभनीयता बढ़ जाती है। यहाँ तक कि वह ग्लानि-जनक भी हो जाता है, इसीलिए श्रावकों को "**मुनितन मलिन न देख घिनावे**" यह उपदेश दिया गया है। मुनियों के मलिन शरीर से घृणा न करना सम्यग्दर्शन का '**निर्विचिकित्सा**' नामक गुण माना गया है। दिगम्बरमुनि के ऐसे शरीर से किसी स्त्री में कामोद्दीपन होना तो दूर, किसी अन्य प्रकार से कामोद्दीप्त हुई स्त्री यदि ऐसे मुनि के दर्शन कर ले, तो उसका उद्दीप्त काम काफूर हो जायेगा, उलटे पैर भागेगा। श्वेताम्बरग्रन्थ 'प्रवचनपरीक्षा' में बोटिक शिवभूति की कथा आयी है। वह श्वेताम्बर साधु बन जाता है, किन्तु कुछ समय बाद श्वेताम्बर-सम्प्रदाय छोड़कर दैगम्बरी दीक्षा ले लेता है। उसे देखकर उसकी बहिन उत्तरा भी साध्वी बनने के लिए वस्त्र त्याग कर नग्न हो जाती है। जब वह नगर में जाती है, तो एक वेश्या की दृष्टि उस पर पड़ती है। वह सोचती है कि स्त्री नग्न होने पर बड़ी बीभत्स लगती है। यदि कामुक पुरुष इसे इस स्थिति में देख लें तो उन्हें स्त्री-शरीर से घृणा हो जायेगी और वे मेरे पास आना छोड़ देंगे, जिससे मेरा धन्धा चौपट हो जायेगा। यह सोचकर वह उत्तरा के नग्न शरीर पर एक वस्त्र डाल देती है। उत्तरा भी उसे स्वीकार कर लेती है। यह कथा इस तथ्य को उजागर करती है कि स्त्री हो या पुरुष, उसका शरीर वस्त्रावृत होने पर ही शोभायमान होता है, निर्वस्त्र होने पर नहीं। अत: दिगम्बर मुनि का शरीर आकर्षणहीन होने से कामोद्दीपन में समर्थ नहीं है।

सन्तदृष्टि से अवलोकन कामविकार का जनक नहीं

यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि किसी वस्तु को देखने-छूने से हमारे मन में क्या भाव उत्पन्न होगा, यह हमारी दृष्टि या भावना पर निर्भर होता है। एक नीतिज्ञ ने कहा है-

मन: कृतं कृतं मन्ये न शरीरकृतं कृतम्।
येनैवालिङ्गिता कान्ता तेनैवालिङ्गिता सुता॥

अर्थात् मन से किया गया कार्य ही यथार्थ होता है, शरीर से किया गया नहीं। जिस शरीर से पत्नी का आलिंगन किया जाता है, उसी से पुत्री का भी किया जाता है।

तात्पर्य यह कि पत्नी भी स्त्री होती है और पुत्री भी, किन्तु पत्नी के प्रति पत्नीरूप भावना (ऐसी स्त्री होने की भावना जिसके साथ काम-व्यवहार पाप नहीं है) होती है और पुत्री के प्रति पुत्रीरूप भावना (ऐसी स्त्री होने की भावना, जिसके साथ काम-व्यवहार पाप है) होती है। इसलिए पत्नी का आलिंगन पत्नीभाव से किया जाता है, अत: उस आलिंगन से मन में कामभाव उत्पन्न होता है, किन्तु पुत्री का आलिंगन (गले लगाना) पुत्रीभाव से किया जाता है, अत: उस आलिंगन से कामभाव उत्पन्न नहीं होता। दुनिया के पिछड़े से पिछड़े समाज में भी माता को माता की दृष्टि से, पिता को पिता की दृष्टि से , बहिन को बहिन की दृष्टि से, भाई को भाई की दृष्टि से, बेटी को बेटी की दृष्टि से और बेटे को बेटे की दृष्टि से देखने के संस्कार परम्परा से प्राप्त होते हैं, इसीलिए पारिवारिक और धार्मिक नैतिकता कायम रहती है। और समाज के अन्य स्त्री-पुरुषों को उनकी उम्र के अनुसार माता-पिता, भाई-बहिन और पुत्र-पुत्री की दृष्टि से देखने का उपदेश दिया जाता है। इसी बजह से सामाजिक और धार्मिक नैतिकता कायम रहती है। इसी प्रकार साधु-सन्तों को भी साधु-सन्तों की दृष्टि से देखने पर अनैतिक भाव की उत्पत्ति के लिए अवकाश नहीं रहता। यत: दिगम्बरजैन मुनियों के प्रति प्राय: सभी स्त्रियों के मन में सन्तभावना विद्यमान होती है, इसलिए इस भावना के साथ उनके दर्शन करने से उनके मन में न कामभाव उत्पन्न होता है, न ग्लानिभाव। तथा सन्तभावना से दर्शन करते हुए भी

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भद्रस्त्रियाँ दिगम्बरमुनि के नाभि से निम्नभाग की ओर दृष्टि नहीं डालतीं।

इसके बावजूद भी दिगम्बर मुनियों के सड़कों पर से निकलने को स्त्रियों में कामविकार की उत्पत्ति का निमित्त मानकर नगरों में उनके विहार का निषेध किया जाय, तो स्त्रियों में कामविकार की उत्पत्ति सवस्त्र पुरुषों के तारुण्य एवं सौन्दर्य को देखकर भी हो सकती है, तब क्या सभी पुरुषों का सड़कों पर आवागमन बन्द कर देना उचित होगा? यदि नहीं, तो कामभाव के उद्दीपन का तर्क देकर दिगम्बर मुनियों के नगरों में विहार को अनुचित बतलाना तर्कसंगत कैसे हो सकता है?

आधुनिक सभ्यता में अश्लील नग्नता भी अश्लील नहीं

मुनि की नग्नता वैराग्यभाव से सम्पृक्त होने के कारण अश्लील नहीं है, किन्तु आधुनिक सभ्यता में तो कामुकता से सम्पृक्त नग्नता भी अश्लील नहीं मानी जाती। फिल्मों में और दूरदर्शन पर नर्तकियों के जो नृत्य दिखाए जाते हैं, उनमें गोपनीय अंगों का प्रदर्शन मुख्य रहता है। वक्षस्थल पर न तो ब्लाऊज रहता है, न दुपट्टा, केवल विशेष प्रकार से डिजाइन किया हुआ एक इतना छोटा सा वस्त्र रहता है, जिससे स्तनों का आधा भाग स्पष्ट दिखाई देता है। इसी प्रकार अधोभाग पर भी इतनी छोटी पैन्टी या स्कर्ट रहती है, जिससे केवल नितम्बभाग आवृत रहता है, जंघाएँ बिलकुल खुली रहती हैं। और नृत्य में स्तनों और नितम्बों का बार-बार संचालन किया जाता है तथा नेत्रों के द्वारा तीव्र कामुकता टपकाई जाती है। आधुनिक 'स्विम सूट' में तो युवतियों के नितम्ब भी उघड़े रहते हैं। इसे सेन्सर बोर्ड अश्लील नहीं मानता और दर्शक इसका विरोध नहीं करते, इसके विपरीत उसमें बड़ा रस लेते हैं। फिल्मों और टी.वी.-धारावाहिकों में नायक-नायिका की आलिंगनमुद्राएँ, चुम्बनक्रिया और बलात्कार के दृश्य दिखाए जाते हैं। 'बैण्डिट क्वीन' जैसी हिन्दी फिल्मों में नायिका के साथ खलनायक को सम्भोग करते हुए और नायिका को नग्न घुमाते हुए दिखाया गया है, जिसे सेन्सर बोर्ड और आज के प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग ने अश्लील नहीं माना। फिल्मी गीतों में ऐसे अश्लील शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें गाकर आवारा, गुण्डे, बदमाश सड़कों पर और गर्ल्स कालेजों के आस-पास लड़कियों को छेड़ते हैं, और इन गीतों को सेंसर बोर्ड अश्लील नहीं मानता। दूरदर्शन के माध्यम से यह अश्लीलता घर-घर में प्रविष्ट हो गयी है और पाश्चात्य संस्कृति में रँगे आधुनिक परिवार पिता-पुत्री, भाई-बहिन की मर्यादाओं को ताक पर रखकर इसे मान्यता देते जा रहे हैं। नगरों और महानगरों के चौराहे अश्लीलदृश्यों वाले फिल्मी विज्ञापनों से पटे पड़े हैं। वास्तविक जीवन में भी अधिकांश युवतियों ने छाती पर दुपट्टा डालना छोड़ दिया है और वे जीन्स के साथ चुस्त टी शर्ट पहनकर बिना दुपट्टा डाले बाहर निकलती हैं, पार्टियों, शादी-विवाहों में जाती हैं, मार्केटिंग करती हैं।

ऐसी कामुक नग्नता के सामने दिगम्बरमुनि की कामविकारशून्य नग्नता तो किसी गिनती में ही नहीं आती। जहाँ उपर्युक्त कामुक नग्नता को अश्लील न माना जाय, वहाँ दिगम्बरमुनि की कामविकारशून्य, मोक्ष की साधनभूत, शिशुवत् निर्दोष नग्नता को अश्लील मानना कितना बड़ा ढोंग, कपट और अन्याय है, यह आसानी से समझा जा सकता है।

दिगम्बरमुनि की नग्नता उपर्युक्त नग्नता के समान अश्लील न होने से समाज के लिए घातक नहीं है, बल्कि हितकारी है, क्योंकि उससे मोक्ष के मार्ग पर चलने और अपने आचरण को पवित्र बनाने का सन्देश मिलता है। अतः पूर्वोक्त बुद्धिजीवियों को उसे अनुचित बतलाने और उसका त्याग कराने का सदाचार-घातक प्रयत्न करने की बजाय उपर्युक्त अश्लील नग्नता को फैलने से रोकने का प्रयत्न करना चाहिए, जिसके कारण सामाजिक मर्यादाओं और नैतिक आचरण के लिए गंभीर संकट पैदा हो गया है।

नैतिकता की जड़ें धार्मिक विश्वासों में

सामाजिक मर्यादाओं और नैतिक आचरण की जड़ें धार्मिक विश्वासों में होती हैं। मनुष्य हिंसादि पापों से केवल इसलिए नहीं डरता कि उसे कानून सजा देगा, बल्कि इस विश्वास के कारण भी डरता है कि पाप करने से उसे अगले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म में नरक के दु:ख भोगने पड़ेंगे। जिन पशुओं की हत्या कानूनन जुर्म नहीं है, जिस मांसभक्षण, मद्यपान, परस्त्रीगमन और आवश्यकता से अधिक धनसंचयरूप परिग्रह की कानून में कोई सजा नहीं है, उनसे मनुष्य केवल नरक के भय से बचता है। भाई-बहन, पिता-पुत्री आदि के बीच जो काम-व्यवहार त्याज्य माना जाता है, उसके पीछे धार्मिक विश्वास ही कारण होता है। स्त्री पातिव्रतधर्म का पालन केवल धार्मिक विश्वास के ही कारण करती है। विवाहपूर्व यौनसम्बन्ध भी धर्म में विश्वास होने के ही कारण पाप समझा जाता है। मनुष्य अपने प्राण देकर भी दूसरे के प्राणों की रक्षा इस धार्मिक विश्वास के कारण करता है कि उसे पुण्य लगेगा और अगले जन्म में सुख प्राप्त होगा।

दिगम्बरत्व दिगम्बरजैन धर्मावलम्बियों के धार्मिक विश्वासों की नींव है। दिगम्बरमुनियों के लिए दिगम्बरत्व के परित्याग की सलाह देकर यदि उसे ढहा देने की कोशिश की गयी, तो दिगम्बरजैनों के लिए नैतिक आचरण के औचित्य का कोई आधार नहीं रहेगा। किसी के मस्तिष्क में बलपूर्वक कोई दूसरे विश्वास ठूँसे नहीं जा सकते।

दिगम्बरत्व के विषय में गाँधी जी का मत अग्राह्य

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने 'नवजीवन' (३१ मई १९३१) में दिगम्बर मुनियों के लिए वस्त्रधारण का जो औचित्य बतलाया था, उससे सहमत नहीं हुआ जा सकता। गाँधी जी एक राष्ट्रनेता थे। देश की आजादी और उत्थान के लिए उनके द्वारा दर्शाया गया मार्ग अत्यन्त उपयुक्त था। इसके लिए हम सब देशवासी उनके ऋणी हैं और वे हमारे लिए वन्दनीय एवं आदरणीय हैं। किन्तु धार्मिक विश्वासों का सम्बन्ध ईश्वर, तीर्थंकर, भगवान्, खुदा और गॉड (The God) से होता है, अत: धर्म के विषय में उनके ही उपदेश सर्वोपरि होते हैं। दिगम्बरत्व तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट मोक्ष का मार्ग है और अत्यन्त युक्तिसंगत एवं विज्ञान-मनोविज्ञान-सम्मत है। इसलिए कोई भी दिगम्बर जैन उस उपदेश के विरुद्ध किसी भी विचार को उचित नहीं मान सकता। दिगम्बरत्व के औचित्य का प्रतिपादन ऊपर किया जा चुका है।

स्व० बैरिस्टर चम्पतराय जी जैन, जैनधर्म के महान् विद्वान् एवं उच्चकोटि के विधिवेत्ता हुए हैं। उन्होंने गाँधी जी के उक्त विचार से असहमति व्यक्त करते हुए एक पत्र उनके लिए लिखा था, जिसमें अनेक प्रमाणों से दिगम्बरत्व का औचित्य सिद्ध किया था। गाँधी जी ने उस पत्र का उत्तर भी दिया था, किन्तु वे अपने ही विचारों पर कायम रहे। बैरिस्टर चम्पतराय जी ने गाँधी जी के उस उत्तर का भी प्रत्युत्तर दिया था। उन सबको '**जिनभाषित**' के प्रस्तुत अंक में प्रकाशित किया जा रहा है।

'शोधादर्श' के मान्य सम्पादक की टिप्पणी पर दो शब्द

जहाँ तक 'शोधादर्श'-५५ (मार्च २००५ ई.) के मान्य सम्पादक की टिप्पणी की बात है, वह कितनी गलत है, यह उक्त पत्रिका के प्रधान-सम्पादक स्व० श्री अजितप्रसाद जी जैन के अग्रज तथा सहसम्पादक श्री रमाकान्त जी जैन एवं सम्पादन-सलाहकार डॉ० शशिकान्त जी जैन के पूज्य पिता जी और जैनदर्शन के महान् विद्वान् परमादरणीय स्व० (डॉ०) ज्योतिप्रसाद जी जैन के लेख 'दिगम्बरत्व का महत्त्व' से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है। इस लेख को भी हम '**जिनभाषित**' के इसी अंक में उद्धृत कर रहे हैं।

शिथिलाचार से दिगम्बरत्व को खतरा

यह अवश्य ध्यान देने योग्य है कि इस अत्यन्त प्राचीन महान् दिगम्बरजैन परम्परा को वर्तमानकाल के कतिपय शिथिलाचारी मुनियों के पतिताचार से खतरा है। इसे हमें पूरी दृढ़ता से रोकना होगा। प्रत्येक श्रावक का यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात के लिए मुनियों को विवश करे कि किसी भी मुनिसंघ में आर्यिकाएँ और ब्रह्मचारिणियाँ न तो साथ में रहें, न साथ-साथ विहार करें तथा जो मुनि २८ मूलगुणों का जान-बूझकर तिरस्कार करें, केशलोच न कर ब्लेड से दाढ़ी बनायें, स्नान करें, ब्रश से दाँत साफ करें, मोबाइल फोन रखें, हीटर और ए.सी आदि का प्रयोग करें और इसी प्रकार के मुनिधर्म -विरुद्ध अन्य कार्य करें, उन्हें कोई भी श्रावक मुनि न माने और और उनकी वन्दना आदि न करे। इस महान् दिगम्बरजैन धर्म की रक्षा के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाँधी जी और चम्पतराय जी के पारस्परिक पत्र

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने 'नवजीवन' (31 मई 1931) में दिगम्बर मुनियों के नग्न विहार के विरोध में जो विचार व्यक्त किये थे, उनके सन्दर्भ में स्व० बैरिस्टर चम्पतराय जी जैन ने पत्र लिखकर गाँधी जी के विचारों को तथ्यविरुद्ध एवं धर्मस्वातन्त्र्य-विरोधी सिद्ध किया था। गाँधी जी ने भी मान्य चम्पतराय जी को उत्तर भेजा था। उसके उत्तर में भी चम्पतराय जी ने गाँधी जी को पत्र लिखा था। शोधादर्श-55 (मार्च 2005 ई.) में पृ. 52 पर सम्पादक महोदय ने गाँधी जी के उपर्युक्त विचारों को तो उद्धृत किया है, किन्तु उसके उत्तर-प्रत्युत्तर में लिखे गये बैरिस्टर चम्पतराय जी एवं गाँधी जी के पत्रों को प्रकाशित नहीं किया। यह देखकर भूतपूर्व इंजीनियर, सप्तम प्रतिमाधारी, ब्र. शान्तिलाल जी जैन ने वे तीनों पत्र 'शोधादर्श' के मान्य सम्पादक को भेजे थे, फिर भी उन्होंने उन्हें प्रकाशित करने का कष्ट नहीं किया। यदि प्रकाशित करते, तो प्रबुद्ध पाठकों को पक्ष-विपक्ष के तर्कों का अनुशीलन कर समुचित दृष्टि बनाने का अवसर मिलता। वे तीनों पत्र उपर्युक्त उद्देश्य से नीचे प्रकाशित किये जा रहे हैं। पत्रव्यवहार अँगरेजी में हुआ था। उनका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है।

सम्पादक

'नवजीवन' (31 मई 1931) में प्रकाशित गाँधी जी के विचार

मैं मानता हूँ कि मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर की है, परन्तु आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष होता है, विकारशून्य होता है। ऐसी निर्दोषता के बिना यदि कोई व्यक्ति नंगा घूमता है, तो वह दोषी माना जायेगा।

दिगम्बर साधु, यदि निर्विकार हों, तो भी समाज की मर्यादा की रक्षा करना उनका धर्म है। दिगम्बर साधु को शहरों में जाने की आवश्यकता नहीं। यदि आवश्यकता हो, तो कम-से-कम शहर की मर्यादा की रक्षा उन्हें करनी चाहिए। ऐसा न करके यदि वे नग्नावस्था में शहर में प्रवेश करने का आग्रह करें, अथवा श्रावक ऐसी जिद करें, तो मेरी दृष्टि से वह अधर्म होगा। स्वयं मुझे नग्नावस्था प्रिय है। यदि मैं निर्जन में रहता होऊँ, तो नग्नावस्था में ही रहूँ, परन्तु इस विकारमय जगत में नग्नावस्था के सामान्य आचरण हो जाने की सम्भावना कम है। नीति बनाये रखने के लिए किसी भी महापुरुष के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने गुप्तांगों को ढके रहे। यह उसका धर्म है। धर्म को जानने और उसकी रक्षा करनेवाला यह विचार नहीं करता है कि 'यह मेरा अधिकार है'। वह तो सोचता है कि 'यह मेरा कर्तव्य है'। ऐसा सोचनेवाले का नग्न रहना कर्तव्य नहीं हो सकता। कर्तव्य अपरिग्रह का है। अपरिग्रह मानसिक धर्म है। जो साधु सामाजिक कर्तव्य-पालन के लिए लंगोटी का भार वहन करता है, वह परिग्रही नहीं, बल्कि संयमी है। जो साधु सामाजिक लज्जा की परवाह किये बिना नग्न विचरण करने का आग्रह करता है, वह स्वेच्छाचारी है। साधु ऐसा काम कभी न करे, जिससे प्रजा की हानि हो। समाज भी उसे ऐसा करने के लिए कभी प्रोत्साहित न करे।

('शोधादर्श-55', मार्च 2005 ई. से उद्धृत)

उक्त विचारों के सन्दर्भ में चम्पतराय जी का गाँधी जी को पत्र

प्रेषक :
चम्पतराय जैन
द्वारा - इंपीरियल बैंक ऑफ इन्डिया
22, ओल्ड ब्रेड स्ट्रीट, लन्दन ई.सी. 2

1 जुलाई, 1931

प्रिय महात्मा जी,

हाल ही में प्रकाशित नवजीवन में जैन मुनियों की नग्नता के बारे में सरदार वल्लभभाई पटेल के धर्म-विरोधी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचारों के समर्थन में आपके अविवेकपूर्ण विचारों (impolitic notions) को पढ़कर मुझे अत्यन्त दु:ख हुआ है।

सरदार वल्लभभाई पटेल निश्चित रूप से राष्ट्रीय नेता हैं और सत्याग्रह के संबंध में उनके विचारों को ऐसा कोई व्यक्ति चुनौती नहीं दे सकता, जिसने राष्ट्र की उनके बराबर नि:स्पृह सेवा न की हो। परन्तु व्यायाम में निपुण व्यक्ति चाहे कितना भी अपने विषय का जानकार हो, वह आर्युविज्ञान और शल्य-चिकित्सा विषय पर अपने विचार अधिकारपूर्वक प्रकट नहीं कर सकता। ठीक इसी प्रकार सरदार पटेल को, जिन्हें संतों को नग्नता के बारे में समीचीन ज्ञान नहीं है, अपने विचार बिना सोचे-समझे प्रगट नहीं करना चाहिए थे।

जहाँ तक आपका प्रश्न है, आप आज विश्व के माने हुए ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका कोई मुकाबला नहीं है। परन्तु मेरा मानना है कि अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा आप यह भली भाँति समझते हैं कि जैनदर्शन को ठीक से समझने के लिये जीवन भर अध्ययन करना आवश्यक है और उसे सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिये वैज्ञानिक, बौद्धिक और कुशाग्र दृष्टिकोण होना अपेक्षित है। इस पत्र में यदि मैं आपके विचार और संयोगवश सरदार पटेल के विचारों की समालोचना विस्तृत रूप से करूँ तो मुझे आशा है आप ऐसा करने के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान करेंगे।

यदि सरदार पटेल ने जो कुछ कहा है, वह सही है, तो फिर क्या इसका अर्थ यह होगा कि स्वराज्य मिलने के उपरांत जैन अपने धर्म को पालने के लिये, कम से कम नग्न साधु विहार के लिये, स्वतंत्र नहीं रहेंगे ?

सामाजिक मान्यतायें समय-समय पर बदलती रहती हैं, परन्तु धर्म के मौलिक सिद्धान्तों में कोई परिवर्तन नहीं होता। अगर इनमें परिवर्तन होने लगे, तो वे सिद्धान्त सही और सत्य नहीं रह सकते। वर्तमान में समाज में एक ओर जहाँ आमोद-प्रमोद और छिछोरापन है, वहीं दूसरी ओर राजनीति और धन-सम्पत्ति के प्रदर्शन का माहौल है। धर्म को लगभग भुला दिया गया है। क्या आप इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाओं से या उनकी मान्यताओं से मार्गदर्शन लेना पसन्द करेंगे ? क्या आप चाहेंगे कि धर्म के मूल सिद्धान्तों में विकृतियाँ या कलुषता आने दी जावें, क्योंकि समाज इस समय संतों की नग्नता को अच्छा नहीं मान रहा है; या आप चाहेंगे कि समाज की मान्यतायें धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार बनाई जावें, क्योंकि धर्म के मूल सिद्धान्त ही सर्वोत्कृष्ट हैं? क्या आप नहीं मानते कि आर्य सभ्यता, अनार्य सभ्यता से भिन्न है, क्योंकि आर्य सभ्यता चार आदर्शों पर आधारित है, वे आदर्श हैं - धर्म, अर्थ (सम्पत्ति-अर्जन), काम (भोग) और मोक्ष। जबकि अनार्य सभ्यता केवल दो आदर्श मानती है और वे हैं - अर्जन और भोग। क्या आप चाहेंगे कि अनार्य सभ्यता उस आर्य सभ्यता का स्थान ग्रहण कर ले, जो उच्च आदर्शवादी है ?

और जहाँ तक जैनों का प्रश्न है, क्या वे अपने आप में एक समाज नहीं हैं ? वे जैन, संतों की नग्नता को सर्वोत्कृष्ट और वन्दनीय मानते हैं। वे उनकी पूजा करते हैं। क्या उनकी पूरी तरह उपेक्षा कर दी जावेगी?

हिन्दुओं में भी नग्न संत होते हैं, जो शहरों में हजारों की संख्या में, जहाँ चाहें वहाँ गमन करते हैं और उनकी पूजा-उपासना सभी वर्गों के द्वारा, जिनमें महिला और बालिकायें भी सम्मिलित हैं, की जाती है। और उस वर्ग के बारे में क्या कहा जाय, जो मंदिर में जाकर शिवलिंग की पूजा अर्चना करते हैं, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों को प्रत्यक्ष काम-विषय का सेवन करते हुए दर्शाया गया हो? पुरुष ही नहीं, बल्कि महिलायें और जवान लड़कियाँ भी पत्थर के शिवलिंग और योनि पर जलाभिषेक करती हैं और हरे पान के पत्ते आदि अर्पित करती हैं। और उड़ीसा में पुरी के महान जगन्नाथ मंदिर के गुम्बज में जो चित्र बने हुए हैं, जहाँ सभी वर्ग के हिन्दू परिवार लाखों की संख्या में पूजन के लिये एकत्रित होते हैं, उनके बारे में क्या कहा जाय ? सम्भव है कि आपके परिवार और सरदार पटेल के परिवार के सदस्यों ने शिवमंदिर में पूजा अर्चना की होगी और हो सकता है, कुछ सदस्य पुरी के जगन्नाथ मंदिर भी गये हों।

क्या आप चाहेंगे कि मैं पुरी के मन्दिर के विशेष पहलुओं पर कुछ प्रकाश डालूँ ? मंदिर के चारों ओर बिना किसी आवरण के ऐसी मानव आकृतियाँ बनी हुई हैं, जिनमें वास्तविक काम-सेवन के दृश्य प्रदर्शित किये गये हैं ?

क्या हिन्दू समुदाय को अपने नग्न संतों से या मन्दिरों में काम-सेवन के दृश्य-प्रदर्शन से या पुरी की आवरणरहित कामकृत्यों में संलग्न मानव आकृतियों को देखकर क्षोभ पैदा होता है ? हिन्दुस्तान में हिन्दू समुदाय की संख्या लगभग २५,००,००,००० है। आप जब समाज की बात करते हैं तो क्या आप २५ करोड़ हिन्दुओं के प्रतिनिधित्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की बात करते हैं? अगर नहीं तो आप इतने बड़े समुदाय को, जो उपर्युक्त पूजा-अर्चना करता हो, उसको अनदेखा कैसे कर सकते हैं ? कृपया भूतकाल में जो हमारे समाज में चलन था, उसके ऊपर भी एक दृष्टि डालें। राजा-महाराजा, उनके मंत्री और धनाढ्य व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों के साथ, जिनमें उनकी पत्नियाँ, मातायें, बहिनें और पुत्रियाँ भी सम्मिलित रहती थीं, ऐसे साधुओं के दर्शन-पूजन के लिये जाते थे, जो समाधि के समय पूर्ण नग्न स्थित होते थे। रानियाँ और राजकुमारियाँ उनके पैरों की मालिश या शरीर का प्रक्षालन करने में अपना सौभाग्य समझती थीं। यदि ऐसे किसी संत को वे अपने यहाँ भोजन करा लेते थे, तो वे अपने आप को अत्यन्त गौरवान्वित महसूस करते थे। इतिहास से विदित होता है कि आर्य सम्राट् इतिहास पुरुष चन्द्रगुप्त, जैन थे जिन्होंने, न केवल नग्न जैन संतों की पूजा-अर्चना की, बल्कि स्वयं भी जैन संत बन गये। श्रेणिक, मगध के सम्राट् थे। वे भी दिगम्बररूपधारी भगवान् महावीर के चरणों में बैठकर उनकी तथा अन्य नग्न दिगम्बर साधुओं की पूजा-अर्चना करते थे। उनकी महारानी दिगम्बर साधुओं की भक्त थीं और उनकी पूजा-अर्चना और सेवा में संलग्न रहती थीं। उसी प्रकार सम्राट् अमोघवर्ष दिगम्बर मुनि बन गये थे। मेरे प्रिय मित्र ! क्या आप नहीं सोचते कि ये सभी सम्राट् और महारानियाँ एक समाज के अंग थे। क्या आपकी दृष्टि में वे सब पागल थे ? यदि आपने भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन किया हो, तो आप पायेंगे कि न केवल भगवान् महावीर बल्कि अन्य अनेक धर्मगुरु जैसे मंखलि गोशाल और पूरन कश्यप पूर्ण दिगम्बर वेश में विचरण करते थे और किसी को भी उनके व्यवहार से क्षोभ या भय पैदा नहीं हुआ।

जैन नीतिशास्त्र और आचारशास्त्र हमें इतनी प्राचीन परम्परा से प्राप्त हुए हैं, जिसकी थाह पाना संभव नहीं है। और ऐसा कोई भी स्वराज्य, स्वराज्य नहीं कहला सकता, जो उन परम्पराओं में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की कोशिश करे। ब्रिटिश सरकार ने भी, जब वह यहाँ सत्ता में आई, उन धार्मिक सिद्धान्तों और परम्पराओं में कोई परिवर्तन नहीं किया था।

मेरे प्रिय मित्र ! जिस स्वराज्य को प्राप्त करने का आप प्रयत्न कर रहे हैं, उसकी प्राप्ति के पूर्व ही आपने अपने इस मंतव्य को प्रकट कर दिया है कि जैन संतों को अपनी प्राचीन-परम्परा को छोड़ना होगा। क्या आप गम्भीर हैं कि हमारे लिये ऐसे स्वराज्य की कोई कीमत होगी ? और क्या आपने हिन्दुओं से इस सम्बन्ध में राय ले ली है कि वे अपने सभी नग्न संतों को बाहर कर देंगे और उन सभी मन्दिरों के उन दृश्यों को नष्ट कर देंगे जिनमें नग्नता प्रदर्शित है ?

मेरे प्रिय आदरणीय मित्र ! सम्भवतया आप का विचार हो सकता है कि मुस्लिम धर्म, जिसके माननेवालों की संख्या अधिक है, नग्न साधुओं के विचरण के विरुद्ध हो और उनके विचारों का भी सम्मान करना चाहिए। मेरे अच्छे मित्र, सबसे पहले तो मैं आपसे यह जानना चाहूँगा कि क्या उन्होंने आपको उनके प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया है और दूसरी बात कि यदि मैं आपके स्थान पर होता तो अपनी राय बनाने के पूर्व सारे तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करता। शायद आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मुस्लिम धर्म में नग्न संतों (दरवेशों) का हमेशा बहुत आदर किया जाता है। अबू कासिम गिलानी एक ऐसे ही मुस्लिम संत थे, जो दिगम्बर मुद्रा में ही विचरण करते थे - सम्पूर्ण निरावरण अवस्था में। उच्च दर्जे के मुस्लिम संत पूर्ण रूप से नग्न ही रहते हैं, उन्हें 'अब्दुल' कहा जाता है, वे देश में कहीं भी उसी अवस्था में विचरण करते हैं। (मिस्टीशिज्म एण्ड मेजिक इन टर्की, द्वारा-एल. एम. जे. गारनेट)। मौलाना रम, जिनकी 'मसनवी' को ईरान का कुरान कहा जाता है और जिसे कुरान और हदीस के बाद दूसरे स्थान पर मान्य किया जाता है, उन्होंने सन्तों की नग्नता को स्वीकार किया है। उनकी कुछ काव्य-पंक्तियाँ उन पुस्तकों में मिलती हैं, जिन्हें इस पत्र के अंत में उल्लिखित किया जा रहा है। ये तथ्य इस मान्यता का खण्डन करते हैं कि मुस्लिम-संस्कृति संतों की नग्नता के विरुद्ध है। इसलिए यदि इस प्रश्न को अभी दरकिनार भी कर दिया जाय कि क्या एक समुदाय अपनी मान्यताओं को दूसरे समुदाय पर थोप सकता है, तो भी मुस्लिम संस्कृति से आपके मत या विचारों को कोई समर्थन प्राप्त नहीं होता।

आपने अपने विचारों को सुन्दर, सुरम्य ढंग से प्रस्तुत कर यह बताने का प्रयत्न किया है कि संतों को अपना संतत्व छोड़ देना चाहिए, जिसे वे अपनी अतीत की मान्यताओं और परम्पराओं से अब तक पालन करते आ रहे हैं। **मेरे**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रिय मित्र! क्या आपने इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है कि क्या आप जैन संतों को शिक्षा देने की अर्हता रखते हैं ? आप स्वयं जैन नहीं हैं, लेकिन यदि आप जैन होते, तो भी जैन संत केवल तीर्थंकरों के उपदेश का ही पालन करते हैं। जैसे आप किसी मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि को अपने निजी विचार मानने के लिए बाध्य नहीं कर सकते, क्योंकि वे अपने-अपने धर्मसंस्थापकों के ही उपदेश को मानते हैं, वैसे ही आपके लिए यही उचित था कि आप जैनों को धर्म के बारे में कोई शिक्षा न देते।

आपने अपने लेख में परिग्रह और अपरिग्रह का उल्लेख किया है। इन दोनों की व्याख्या जैसी आपने की है, वह अजैन व्याख्या है। जैन सिद्धांत में तो लंगोटी को भी परिग्रह कहा गया है। परिग्रह बाह्य और अंतरंग दोनों प्रकार का होता है। जब तक आप बाह्य परिग्रह रखते हैं, अंतरंग परिग्रह से निवृत्ति नहीं हो सकती।

मेरे प्रिय मित्र ! आपने लिखा है कि आपको यह विश्वास करने का कोई कारण नजर नहीं आता कि जैन संत काम-वासना से मुक्त होते हैं। मैं यह जानना चाहूँगा कि इसका आपके पास क्या प्रमाण हैं ? मैं यह स्वीकार करता हूँ कि कुछ जैन संत उतने विकार-मुक्त नहीं हैं, जितना उन्हें होना चाहिए, परन्तु आपका कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। मैं आपको ऐसे संतों के उदाहरण दे सकता हूँ, जो वस्तुत: विकारमुक्त हैं। किन्तु मुझे नहीं लगता कि आप ऐसे किसी एक भी जैन साधु का उदारहण दे सकेंगे, जिसने किसी महिला से अभद्र व्यवहार या कुशील आचरण किया हो। जो भी हो, आपको किसी व्यक्तिविशेष के दुर्गुण देखकर पूरे साधु-समाज पर लांछन नहीं लगाना चाहिए।

आपको यह भी ध्यान रखना है कि संत आसमान से बने-बनाये नहीं आते, अपितु जब उच्च गृहस्थ संसार से विरक्त हो जाते हैं, तब मोक्ष की साधना के लिए साधु-अवस्था स्वीकार करते हैं।

आपने 'गीता' के एक श्लोक का उल्लेख किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'गीता' एक बहुत पवित्र एवं महान् ग्रंथ है, जिसमें आज 25,00,00,000 मानव श्रद्धा रखते हैं, किन्तु जैनों के अलग धर्म-शास्त्र हैं। आप निश्चित रूप से यह नहीं चाहेंगे कि हिन्दू जैन धर्मग्रंथों में उपदिष्ट धर्म का पालन करें। ठीक उसी प्रकार कोई यह नहीं चाहेगा कि आप जैनों को 'गीता' के उपदेश के अनुसार चलने की माँग करें। फिर भी, 'गीता' में ऐसा कोई भी वचन नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि संतों को नग्न विचरण नहीं करना चाहिए।

मेरा यह पत्र विस्तृत हो गया है, इसलिए यह दिखलाने के लिए कि हिन्दूधर्म, इस्लामधर्म तथा अन्य प्राचीन धर्मों में भी साधुओं की नग्नता को आदरणीय माना गया है, मैं दुनिया के विभिन्न धर्मग्रन्थों से उद्धरण नहीं दूँगा, क्योंकि इससे पत्र और विस्तृत हो जायेगा। मैं इस विषय पर आपको केवल कुछ पुस्तकों के नाम बतलाना चाहता हूँ। उनमें से एक है **'दिगम्बरमुद्रा की सर्वमान्यता'**, जो जैन सिद्धान्त भवन, आरा से प्राप्त की जा सकती है।

मैंने स्वयं इस विषय पर The Nudity of Saints नाम की पुस्तक लिखी है। इस समय वह शायद प्रेस में है। मैं अपने भारत-स्थित मित्रों को लिख रहा हूँ कि प्रकाशित होते ही उसकी एक प्रति आपको भेंट करें।

मेरे प्रिय मित्र ! मुझे विश्वास है कि आप इस विषय पर पुन: विचार करेंगे और इससे सम्बद्ध दो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को पूर्ण मान्यता प्रदान करेंगे, जो इस प्रकार हैं-

१. प्रत्येक समुदाय को अपने धर्म के पालन का अधिकार है, जिसमें किसी अन्य समुदाय या व्यक्ति के द्वारा बाधा न पहुँचायी जाय।

२. राज्य की मार्ग-निर्देशक नीति का निर्माण आवश्यक है, जिसकी शक्ति और स्थायित्व धर्म में हस्तक्षेप न करने के सिद्धान्त में निहित है, चाहे धर्म का कोई भी रूप हो।

जैन समुदाय को दो ऐसे महान् व्यक्तियों के विचारों से क्षोभ पैदा हुआ है, जो उच्चश्रेणी के राष्ट्रभक्त और अग्रणी नेता हैं और अब जैन समुदाय ऐसी नीति घोषित किये जाने की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा है, जिससे स्थिति शीघ्र सँभल जाय। आप और वल्लभभाई पटेल जैसे नेताओं के विचारों से विश्व में भ्रम पैदा हो सकता है और जो लोग हिन्दूधर्म और जैनधर्म के विरुद्ध हैं और उनसे ईर्ष्या करते हैं, वे इस स्थिति का फायदा उठाकर इन दोनों धर्मों के पालनेवालों में विद्वेष उत्पन्न कर सकते हैं। मैं एक क्षण को भी यह मानने के लिये तैयार नहीं हूँ कि आप इस सिद्धान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को मानने से इनकार कर देंगे कि सभी धर्मों के प्रति समभाव रखना ही सरकार की सर्वोत्तम नीति है। यदि कोई विधायक ऐसा महसूस करता है कि कुछ धार्मिक चीजें उसके दृष्टिकोण या श्रद्धा के अनुरूप नहीं हैं, तो वह अपने संसदीय क्षेत्र के लोगों से उन व्यक्तियों या समुदायों का विरोध करने को ही कहेगा जो समाज में विवेकहीनता, विद्वेष और सहनशीलता-रहित वातावरण पैदा करना चाहते हैं।

मेरे आदरणीय मित्र ! इस पत्र के उपसंहार के रूप में क्या मुझे यह लिखने की इजाजत देंगे कि आपने अपने लेख में जिन काम-वासनाओं और पाप-क्रियाओं का उल्लेख किया है, वे सही नहीं हैं और मैं इस सम्बन्ध में आपसे या किसी भी अन्य व्यक्ति से चर्चा करने को तैयार हूँ , जिससे मैं यह सिद्ध कर सकूँ कि आपके विचार सही नहीं हैं। मैं इस समय केवल यही कहना चाहूँगा कि जैन संत तीर्थंकरों को छोड़कर किसी अन्य से धार्मिक-मार्गदर्शन नहीं ले सकते। क्या मेरी यह माँग अधिक है कि जैनियों को अपनी 'मूर्खताओं' का पालन किसी अन्य के हस्तक्षेप के बिना ही करते रहने दिया जाय?

विश्वास कीजिये,
आपके कई गुणों का समर्पित प्रशंसक
(चम्पतराय जैन)
विद्यावारिधि, जैन दर्शन दिवाकर,
बार-एॅट-ला एवं दि. जैन परिषद् का आजीवन अध्यक्ष

श्री चम्पतराय जी को गाँधी जी द्वारा साबरमती से दिया गया उत्तर

जुलाई 30, 1931

प्रिय मित्र,

मुझे आपका 1 जुलाई का पत्र प्राप्त हुआ है। मैं आपको उसके लिये धन्यवाद देता हूँ।

मैं आपसे वार्ता करने का साहस नहीं रखता। मैंने अपने स्वयं के विचारों को सरल ढंग से सावधानीपूर्वक (जो सम्भव था) व्यक्त किया था। जब मैंने अपने विचार व्यक्त किये थे, उस समय वे सभी बातें, जो आपने अपने पत्र में लिखी हैं, मेरे सामने थीं। सेन्ट पॉल के मतानुसार बहुत सी चीजें कानून की दृष्टि से ठीक होते हुए भी उचित नहीं होतीं।

आपका
मो. क. गाँधी

श्रीयुत चम्पतराय जैन
द्वारा-इम्पीरियल बैंक ऑफ इन्डिया,
22, ओल्ड ब्रेड स्ट्रीट,
लन्दन ई.सी. 2.

श्री चम्पतराय जी का गाँधी जी को प्रत्युत्तर

द्वारा- इम्पीरियल बैंक ऑफ इन्डिया लि.
22, ओल्ड ब्रेड स्ट्रीट,
लन्दन, ई.सी. 2.

(जिनेवा) 24 अगस्त, 1931

प्रिय महात्मा जी,

आपका 30 जुलाई का लिखा हुआ पत्र मुझे यहाँ जिनेवा में, जहाँ इस माह मैं कुछ दिन व्यतीत कर रहा हूँ, प्राप्त हुआ है। मैं आपके तत्परतापूर्वक दिये गये उत्तर के लिये धन्यवाद देना चाहता हूँ, क्योंकि यह विषय जैन समुदाय के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप मुझसे इस विषय पर वार्तालाप करने के लिये तैयार नहीं हैं, यह आपका निर्णय एकदम उचित है, क्योंकि अधिकांश वार्तालापों से कोई समाधान नहीं निकलता।

आपने अपने पत्र में **सेन्ट पॉल** के उस कथन का उल्लेख किया है, जिसमें उन्होंने कहा था कि 'कुछ चीजें कानून- सम्मत होते हुए भी उचित नहीं होतीं। किन्तु उन्होंने यह बात बिलकुल भिन्न प्रसंग में कही थी। प्रश्न था कि धर्मनिरपेक्ष कानून के तहत मांससेवन कानून-सम्मत होते हुए भी, क्या ईसाइयों को उसका सेवन करना चाहिए? उत्तर था- नहीं। धर्म का शासन सर्वोच्च है। धर्मनिरपेक्ष कानून जिसकी अनुमति देता है, वह हमेशा उचित नहीं होता।

इस प्रकार धर्म को धर्मनिरपेक्ष या सामाजिक कानून और मान्यताओं पर विजय प्राप्त हुई थी। यही सिद्धान्त साधुओं की नग्नता के बारे में न्यायसंगत है। यदि सामाजिक रूढियों और धार्मिक मान्यताओं में विरोधाभास हो, तो धार्मिक मान्यताएँ ही स्वीकार्य होती हैं।

यदि आप सेन्ट पाल के कथन को विपरीत अर्थ में प्रयुक्त करेंगे, तो उससे कोई लाभ नहीं होगा। उससे तो आर्य संस्कृति, जो देवों की सभ्यता मानी जाती है, महज एक सामाजिक शोर-शराबा मात्र रह जावेगी।

मुझे नहीं मालूम कि मेरी दिगम्बर जैन मुनि बनने की इच्छा इस जीवन में कभी पूरी हो सकेगी या नहीं, परन्तु मैं एक दिन दिगम्बर मुनि अवश्य बनना चाहता हूँ। मैं सोच नहीं पा रहा हूँ कि उस समय तक यदि स्वराज्य प्राप्त हो जावेगा, तो आप मेरे साथ कैसा व्यवहार करेंगे ?

यदि मुझे सामाजिक या कानूनी प्रतिबंधों के कारण वस्त्र-धारण करने पड़ेंगे, तो मैं अपने 'निर्वाण-प्राप्ति' के उच्च आदर्श से वंचित हो जाऊँगा। यदि मैं वस्त्र त्याग दूँगा तो कानूनी कार्यवाही की जा सकेगी या मुझे उस परिस्थिति में मृत्यु दण्ड दिया जा सकेगा। इन दोनों ही स्थितियों में मुझे खेदखिन्न होना अनिवार्य होगा।

मेरे प्रिय मित्र ! क्या उन परिस्थितियों में मेरे लिये स्वराज में नग्नता-विरोधी कानून के विरोध में शांतिपूर्वक सत्याग्रह, असहयोग-आंदोलन ही उचित नहीं होगा ?

आपके विचारों के प्रकाशन के बाद कई स्थानों पर (दिगम्बर) जैन संतों के विरुद्ध उत्पीड़न की घटनायें हुई हैं और सम्भवत: सरकार के भी नग्नता के प्रति दृष्टिकोण में नकारात्मक परिवर्तन हुआ है। अभी भी समय है कि बिना सोचे-समझे व्यक्त किये गये उन विचारों पर पुन: विचार किया जाय कि जैन समुदाय पर उनका क्या प्रभाव होगा? यह दिगम्बर जैन समाज के लिये जीवन-मरण का प्रश्न है और इसके परिणाम अत्यन्त भयानक हो सकते हैं। यह स्थिति जैन समाज और सरकारी अधिकारियों के बीच संघर्ष उत्पन्न करनेवाली है। फिर गाँधी जी के लिखने का भी कोई असर शायद ही हो। यह किसी बयान को या विचारों को वापिस लेने का प्रश्न नहीं है, बल्कि आप जानते हैं कि स्थिति के नियंत्रण के लिये स्पष्टीकरण किस प्रकार दिया जा सकता है। इस कला में आपसे निपुण और कौन हो सकता है? मेरा आप से निवेदन है कि आप अपनी उस कला का उपयोग कर स्पष्टीकरण दें, जिससे शांति और सद्भाव का वातावरण निर्मित हो और यह घोषणा करें कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद, जिसके लिये सभी लोग, जिनमें जैन भी सम्मिलित हैं, प्रयत्नशील हैं, दिगम्बर जैन साधुओं के विचरण आदि में कोई व्यावधान नहीं किया जावेगा और यह आचरण उसी प्रकार चलता रहेगा जैसा अभी चल रहा है।

मेरे प्रिय मित्र ! मैं पुन: उस भावना के लिए आपका धन्यवाद करता हूँ, जिससे प्रेरित होकर आपने मेरे पत्र का उत्तर लिखा और प्रार्थना करता हूँ कि आप इन पंक्तियों पर गम्भीरता से विचार करेंगे।

आपका विश्वसनीय

(चम्पतराय जैन)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बरत्व का महत्त्व

स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जी जैन

मोक्ष-प्राप्ति के लिए साधक की चरम अवस्था में दिगम्बरत्व अनिवार्य है, **किन्तु वह अन्तरंग एवं बाह्य, दोनों ही प्रकार का युगपत् होना चाहिए, तभी उसकी सार्थकता है। यह मार्ग दुस्साध्य है।** यही कारण है कि लगभग एक सवा करोड़ जैनों की संख्या में २५० सौ के करीब ही दिगम्बर मुनि हैं। वे सभी दिगम्बरत्व के साधक हैं और प्रायः २८ मूलगुणों का निरतिचार से पालन करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि दिगम्बर मुनि अपनी अत्यन्त कठोरचर्या, व्रत, नियम, संयम तथा शीत-ऊष्ण-दंश-मशक-नाग्न्य-लज्जा आदि बाईस परीषहों को जीतने एवं नाना प्रकार के उपसर्गों को सहन करने में सक्षम होता है। उसका जीवन एक खुली पुस्तक होता है। ज्ञान की उसमें कमी या अल्पाधिक्य हो सकता है। संस्कारों या परिस्थितिजन्य दोष भी लक्ष्य किये जा सकते हैं, अथवा दिगम्बर मुनि के आदर्श की कसौटी पर भी वह भले ही पूरा-पक्का न उतर पाये, **तथापि अन्य परम्पराओं के साधुओं की अपेक्षा अपने नियम-संयम, तप एवं कष्ट सहिष्णुता में वह श्रेष्ठतर ही ठहरता है।** फिर जो मुनि आदर्श को अपने जीवन में चरितार्थ करते हैं, उन मुनिराजों की बात ही क्या है, वे सच्चे साधु या सच्चे गुरु ही आचार्य-उपाध्याय-साधु के रूप में पंच-परमेष्ठी में परिगणित हैं, वे मोक्षमार्ग के पूजनीय एवं अनुकरणीय मार्गदर्शक होते हैं। वे तरणतारण होते हैं। उन्हीं के लिए कहा गया है-

धन्यास्ते मानवाः मन्ये ये लोके विषयाकुले।
विचरन्ति गतग्रन्थाश्तुरंगे निराकुलाः॥

इस दिगम्बरमार्ग के प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर आदिदेव ऋषभ थे। जिनदीक्षा लेने के उपरान्त उन्होंने दिगम्बरमुनि के रूप में तपश्चरण करके केवलज्ञान एवं तीर्थंकर पद प्राप्त किया था। उनके भरत-बाहुबली आदि अनेक सुपुत्रों और अनगिनत अनुयायियों ने इसी दिगम्बरमार्ग का अवलम्बन लेकर आत्मकल्याण किया है। भगवान् ऋषभ के समय से लेकर अद्य पर्यन्त यह दिगम्बरमुनि-परम्परा अविच्छिन्न चली आयी है। बीच-बीच में मार्ग में काल-दोष से विकार भी उत्पन्न हुए, चारित्रिक शैथिल्य भी आया, किन्तु संशोधन-परिमार्जन भी होते रहे हैं।

जैनपरम्परा का स्वयं वह श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी, जो जैन साधु के लिए दिगम्बरत्व को अपरिहार्य नहीं मानता और साधुओं को सीमित-संख्यक, बिनसिले श्वेतवस्त्र धारण करने की अनुमति देता है, इस तथ्य को मान्य करता है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तथा अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर अपने जीवन में अचेलक अथवा दिगम्बर ही रहे थे, अन्य अनेक पुरातन जैनमुनि दिगम्बर रहे, तथा यह कि जिनमार्ग में जिनकल्पी साधुओं का श्रेष्ठ एवं श्लाघनीय रूप अचेलक है। **कला क्षेत्र में भी ८वीं-९वीं शती ई. से पूर्व की प्रायः सभी उपलब्ध तीर्थंकर या जिनप्रतिमाएँ दिगम्बर ही हैं** और वे उभय सम्प्रदायों के अनुयायियों द्वारा समान रूप से पूजनीय रहीं, आज भी हैं। कालान्तर में साम्प्रदायिक भेद के लिए श्वेताम्बर साधु जिनमूर्तियों में भी लंगोट का चिह्न बनवाने लगे। मुकुट, हार, कुंडल, चोली-आंगी, कृत्रिम नेत्र आदि का प्रचलन तो इधर लगभग दो अढ़ाई सौ वर्ष के भीतर ही हुआ है।

जैन-परम्परा में नहीं, अन्य धार्मिक परम्पराओं में भी श्रेष्ठतम साधकों के लिए दिगम्बरत्व की प्रतिष्ठा की गयी प्राप्त होती है। **प्रागैतिहासिक एवं प्राग्वैदिक सिन्धु-घाटी सभ्यता के मोहन-जोदड़ो से प्राप्त अवशेषों में** कायोत्सर्ग दिगम्बर योगिमूर्ति का धड़ मिला है। स्वयं **ऋग्वेद** में वातरशना (दिगम्बर) मुनियों का उल्लेख हुआ है। **कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक** में उक्त वातरशना मुनियों को श्रमणधर्मा एवं ऊध्वरेतस (ब्रह्मचर्य से युक्त) बताया है। **श्रीमद्भागवत** में भी वातरशना मुनियों के उल्लेख हैं तथा वहाँ व अन्य अनेक ब्राह्मणीय पुराणों में नाभेय ऋषभ को विष्णु का एक प्रारम्भिक अवतार सूचित करते हुए दिगम्बर चित्रित किया गया है। ऐसे उल्लेखों के आधार पर **स्व. डॉ. मंगलदेव शास्त्री का अभिमत है कि 'वातरशना-श्रमण' एक प्राग्वैदिक मुनि परम्परा थी और वैदिक धारा पर उसका प्रभाव स्पष्ट है।**

कई उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, **रामायण, महाभारत** आदि अनेक ब्राह्मणीय धर्मग्रन्थों, **वृहत्संहिता, भर्तृहरिशतक** तथा क्लासिकल संस्कृत साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों के उल्लेख एवं दिगम्बरत्व की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। ब्राह्मण परम्परा में ६ प्रकार के सन्यासियों का विधान है, जिनमें तुरीयातीत श्रेणी के सन्यासी दिगम्बर ही रहते थे। जड़-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरत, शुकदेव मुनि आदि कई दृष्टान्त भी उपलब्ध हैं। **परमहंस श्रेणी** के साधु भी प्राय: दिगम्बर रहते हैं। मध्यकालीन साधु अखाड़ों में भी **एक अखाड़ा दिगम्बरी** नाम से प्रसिद्ध है। पिछली शती के वाराणसी-निवासी **महात्मा तेलंग स्वामी** नामक सिद्ध योगी, जो रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे प्रबुद्ध संतों एवं सुधारकों द्वारा भी पूजित हुए, सर्वथा, दिगम्बर रहते थे। बौद्ध भिक्षुओं के लिए नग्नता का विधान नहीं है, किन्तु स्वयं गौतमबुद्ध ने अपने साधनाकाल में कुछ समय तक दिगम्बरमुनि के रूप में तपस्या की थी। **यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मों में भी सहज नग्नत्व को निर्दोषता का सूचक एवं श्लाघनीय माना गया है।** जलालुद्दीन रूमी, अलमन्सूर, सरमद जैसे सूफी संतों ने दिगम्बरत्व की सराहना की। सरमद तो सदा नंगे रहते ही थे। उनकी दृष्टि में तो ''**तने उरियानी (दिगम्बरत्व) से बेहतर नहीं कोई लिबास, यह वह लिबास है जिसका न उल्टा है न सीधा।**'' सरमद का कौल था कि '**पोशानीद लबास हरकारा ऐबदीद, बे ऐबारा लबास अयानीदाद**'-पोशाक तो मनुष्य के ऐबों को छिपाने के लिए है, जो बेऐब-निष्पाप हैं उनका परिधान तो नग्नत्व ही होता है। नन्द-मौर्य कालीन यूनानियों ने भारत के दिगम्बर मुनियों (जिम्नोसोफिस्ट) के वर्णन किये हैं, युवान-च्वांग आदि चीनी यात्रियों ने भी भारत के विभिन्न स्थानों में विद्यमान दिगम्बर (लि-हि) साधुओं या निर्ग्रन्थों का उल्लेख किया है। सुलेमान आदि अरब सौदागरों और मध्यकालीन यूरोपीय पर्यटकों में से कई ने उनका संकेत किया है। **डॉ. जिम्मर जैसे मनीषियों** का मत है कि प्राचीन काल में जैनमुनि सर्वथा दिगम्बर ही रहते थे।

वास्तव में दिगम्बरत्व तो स्वाभाविकता और निर्दोषिता का सूचक है। महाकवि **मिल्टन** ने अपने काव्य '**पैरेडाइज़ लॉस्ट**' में कहा है कि आदम और हव्वा जब तक सरलतम एवं सर्वथा सहज निष्पाप थे, स्वर्ग के नन्दन कानन में सुखपूर्वक विचरते थे, किन्तु जैसे ही उनके मन विकारी हुए उन्हें उस दिव्यलोक से निष्कासित कर दिया गया। **विकारों को छिपाने के लिए ही उनमें लज्जा का उदय हुआ और परिधान (कपड़ों) की उन्हें आवश्यकता पड़ी। महात्मा गाँधी** ने एक बार कहा था, 'स्वयं मुझ नग्नावस्था प्रिय है, यदि निर्जन वन में रहता होऊ तो मैं नग्न अवस्था में रहूँ।' **काका कालेलकर ने क्या ठीक ही कहा है,** ''पुष्प नग्न रहते हैं। प्रकृति के साथ जिन्होंने एकता नहीं खोयी है ऐसे बालक भी नग्न घूमते हैं। उनको इसकी शरम नहीं आती है और उनकी निर्व्याजता के कारण हमें भी लज्जा जैसा कुछ प्रतीत नहीं होता। **लज्जा की बात जाने दें, इसमें किसी प्रकार का अश्लील, बीभत्स, जुगुप्सित, अरोचक हमें लगा है, ऐसा किसी भी मनुष्य का अनुभव नहीं।** कारण यही है कि नग्नता प्राकृतिक स्थिति के साथ स्वभाव-शुदा है। मनुष्य ने विकृत ध्यान करके अपने विकारों को इतना अधिक बढ़ाया है और उन्हें उल्टे रास्तों की ओर प्रवृत्त किया है कि स्वभाव सुन्दर नग्नता सहन नहीं होती। दोष नग्नता का नहीं, अपने कृत्रिम जीवन का है।''

वस्तुतः निर्विकार दिगम्बर सहज वीतराग छवि का दर्शन करने से तो स्वयं दर्शक के मनोविकार शान्त हो जाते हैं- अब चाहे वह छवि किसी सच्चे साधु की हो अथवा जिन-प्रतिमा की हो। आचार्य सोमदेव कहते हैं कि समस्त प्राणियों के कल्याण में लीन ज्ञान-ध्यान तपः पूत मुनिजन यदि अमंगल हों, तो लोक में फिर और क्या ऐसा है जो अमंगल नहीं होगा।

शोधादर्श-५९ (जुलाई २००६ ई.) से साभार

जितेन्द्रिय नग्न होते हुए भी अनग्न है

नग्ना एव हि जायन्ते देवता मुनयस्तथा।
ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जायन्त्यवाससः॥

इन्द्रियैरजितैर्नग्ना दुकूलेनापि संवृताः।
तैरेव संवृतो गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्॥

''देवता, मुनि तथा लोक के अन्य सभी मानव नग्न ही उत्पन्न होते हैं।''

''जिसने अपनी इन्द्रियों को नहीं जीता, उसका शरीर वस्त्र से आवृत हो तो भी, वह नग्न है। किन्तु जिसने उन्हें जीत लिया है, वह नग्न होते हुए भी अनग्न है। नग्नता वस्त्रों से नहीं ढँकती, इन्द्रिय-विजय से ढँकती है।''

(वैदिक) ब्रह्माण्डपुराण/ पाद २/ अध्याय २७/ श्लोक ११८-११९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभभाव कर्मक्षय का कारण है

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी
पू. आ. विद्यासागर जी महाराज के संघस्थ

कोनी जी अतिशयक्षेत्र में शीतकाल के दौरान आचार्य श्री द्वारा अभिव्यक्त आगमोक्त चिन्तन

शुभ लेश्या, शुभ भाव और शुभ ध्यान को लेकर हमें सोचना है। लेश्याओं के विषय में सिद्धान्तग्रन्थों में चतुर्थ गुणस्थान के बाद एकान्तरूप से शुभ लेश्या ही स्वीकृत है, अपवाद मात्र तत्त्वार्थसूत्र में पुलाक, वकुश आदि मुनियों की लेश्या को लेकर आता है। प्रसंग में पंचम गुणस्थान को लें, वहाँ शुभ लेश्या है, साथ ही साथ आर्तध्यान, रौद्रध्यान और धर्म्यध्यान भी गौणरूप से हैं। प्रश्न यह उठता है कि शुभ लेश्या के साथ रौद्रध्यान कैसे सम्भव है? साथ ही भाव मार्गणा को भी देखें। सिद्धान्त में शुभ और अशुभ दो ही भाव मान्य हैं, शुद्ध भाव नहीं। यह शुद्धभाव अध्यात्मपद्धति में कथित है, जो उपयोग के विभाजन में शुद्धोपयोग नाम पाता है। अतः स्पष्टतया सिद्धान्त से शुभभाव ही पंचम गुणस्थान में हुआ। उपर्युक्त प्रश्न ही आगे बढ़ता है और जिज्ञासा होती है कि एक शुभभाव के साथ पंचम गुणस्थान में शुभ लेश्या तो घटित होती है, किन्तु रौद्रध्यान कैसे? यतः रौद्रध्यान तो अशुभध्यान है और अशुभ भावों के अन्तर्गत आता है। तो आचार्य कहते हैं कि यह संयमासंयम गुणस्थान है यहाँ संयम और असंयम दोनों एक साथ हैं। जितना त्याग किया, उस संकल्प के प्रति आस्था और उसका पालन यह संयम है और जितना रख रखा है उसके प्रति ममत्व, यह असंयम के लिये है। अथवा त्रस हिंसा का त्याग है, इसलिये संयम भाव है और स्थावर हिंसा का त्याग नहीं कर सकता है, इसलिये असंयम भाव है। यहाँ दो भाव नहीं हैं, भाव एक ही है। पाँच भावों में से आचार्यों ने इस गुणस्थान में क्षायोपशमिक भाव कहा है। यह क्षायोपशमिक भाव ही तत्त्वार्थसूत्र में मिश्र भाव से व्याख्यायित है। जितना संकल्प की रक्षा के लिये भाव है, वह शुभ भाव शुभ लेश्या का कारण है **और बचे हुए परिग्रह के प्रति रक्षण का ममत्व भाव भी शुभ भाव है, किन्तु रौद्र ध्यानात्मक है,** है एक ही भाव, जो मिश्र भाव कहा जाता है। कोई दो भाव मिलाकर एक मिश्र भाव बना हो ऐसा नहीं, कोई दो उपयोग मिलाकर एक मिश्र दशा बनी हो ऐसा नहीं है, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं जिस भाव से बन्ध होता है वह अशुद्ध उपयोग है और जिससे निर्जरा होती है वह शुद्धोपयोग है। ये दोनों उपयोग मिश्र रूप में साथ-साथ चलते हैं, जिसे क्रमशः कर्मधारा और ज्ञानधारा का प्रारूप भी बताते हैं। किन्तु ये सारी बातें मनगढ़न्त हैं, जिनका आगम से कोई सरोकार नहीं है। किसी भी आचार्य प्रणीत आगम ग्रन्थ में मिश्र उपयोग का व्याख्यान नहीं है। एक साथ दो उपयोग होना आगम विरुद्ध मान्यता है। जहाँ कहीं भी मिश्र भाव का कथन किया है वह क्षायोपशमिक एक भाव को लेकर कहा है। वह क्षायोपशमिक भाव सर्वघाती स्पर्धकों के उदयाभावी क्षय, उन्हीं के सदवस्थारूप उपशम से तथा देशघाती स्पर्धकों के उदय से होता है। इस आगमविरुद्ध मनमानी कल्पना का उद्देश्य मात्र चतुर्थ गुणस्थान में ज्ञानधारा को सिद्ध करना है, जिससे निर्जरातत्त्व की उपलब्धि बताकर व्रत-संयम आदि से वंचित रखकर अपने मत को पुष्टि करना और देशसंयम गुणस्थान में होने वाले क्षयोपशम (यानि मिश्र) भाव को औदयिक सिद्ध करना है, क्योंकि औदयिक भाव बन्ध का कारण है। ऐसा व्याख्यान करने से कोई भी भोला-भाला प्राणी व्रतसंयम से दूर रहकर ही भोगों को भोगते हुए 'ज्ञानधारा ही कर्म बन्ध से बचाती है', ऐसा मानता हुआ मोक्षमार्गी हो जाता है और इसे ही निश्चय मोक्षमार्ग कहकर व्यवहार मोक्षमार्ग को नकार देते हैं। किन्तु यह नितान्त गलत है, क्योंकि संयमासंयम भाव मात्र प्रत्याख्यानावरणी कर्म के उदय से नहीं, किन्तु उसके साथ अनंतानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरणी कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय और उन्हीं का सदवस्था रूप उपशम तथा संज्वलन के देशघाती स्पर्धकों का भी उदय होता है, तब कहीं जाकर एक क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न होता है। यह क्षयोपशम भाव आत्मा का प्रसाद है, विशुद्धि है, जो असंख्यातगुणी कर्म-निर्जरा का कारण है। **इसके माध्यम से जब तक संयमासंयम गुणस्थान है, तब तक वह चाहे भोजन, शयन आदि कोई भी क्रिया करे, असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा का भाजक होता है।** यह निर्जरा उसके संकल्प के कारण प्रतिसमय बनी रहती है, जो असंयम दशा में कदापि संभव नहीं, मात्र सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के समय को छोड़कर। अतः इस सैद्धान्तिक व्याख्यान को छोड़कर किसी की भी कल्पित बात को मोक्षमार्ग के प्रकाशक कहना, सम्यग्ज्ञान की किरण कहकर लोगों को फुसलाकर अपने पन्थ में शामिल करने के अलावा और क्या अभिप्राय है? हमें समझ में नहीं आता। यदि संयमासंयम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव प्रत्याख्यानावरण कर्म के उदय से होता है, इसलिये औदयिक है, तो मैं उन्हीं से पूछता हूँ कि किस आगम में लिखा है कि प्रत्याख्यानावरण कर्म के उदय से संयमासंयम भाव होता है? सच तो यह है कि प्रत्याख्यानावरणकर्म का उदय सकल संयम का घात करने वाला है, न कि संयमासंयम को उत्पन्न करने वाला। संयमासंयम की उत्पत्ति की प्रक्रिया तो वह है, जो ऊपर बतलायी गयी है। **दूसरे यदि कर्म का उदयमात्र होने से आप औदयिकभाव स्वीकार करते हैं, तो ध्यान रखना कि सम्यग्दर्शन भी औदयिक भाव हो जायेगा** और आपके ही व्याख्यान से वह भी बन्ध का ही कारण होगा, जो आपके लिये बहुत क्षोभकारक बात होगी। इसलिये आगमिक परिभाषाओं को समझकर ही दूसरों को समझाना श्रेयस्कर है। इस शुभभाव को श्री जयधवल नामक सिद्धान्त ग्रन्थ में कर्मक्षय का कारण बतलाते हुए लिखते हैं -

'सुहसुद्धपरिणामेहिं कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्तीदो।'

(जयधवल/पु.1/पृ.5)

उपाधि

सागर में आचार्य महाराज के सान्निध्य में पहली बार षट्खण्डागम वाचना-शिविर आयोजित हुआ। सभी ने खूब रुचि ली। लगभग सभी वयोवृद्ध और मर्मज्ञ विद्वान् आए। जिन महान् ग्रन्थों को आज तक दूर से ही माथा झुकाकर अपनी श्रद्धा सभी ने व्यक्त की थी, आज उन पवित्र ग्रन्थों को छूने, देखने, पढ़ने और सुनने का सौभाग्य मिला। यह जीवन की अपूर्व उपलब्धि थी।

वाचना की समापन बेला में सभी विद्वानों के परामर्श से नगर के प्रतिष्ठित एवं प्रबुद्ध नागरिकों के एक प्रतिनिधि मण्डल ने आचार्य महाराज के श्री-चरणों में निवेदन किया कि समूचे समाज की भावनाओं को देखते हुए आप 'चारित्र-चक्रवर्ती' पद को धारण करके हमें अनुगृहीत करें। सभी लोगों ने करतल ध्वनि के साथ अपना हर्ष व्यक्त किया। आचार्य महाराज मौन रहे। कोई प्रतिक्रिया तत्काल व्यक्त नहीं की।

थोड़ी देर बाद आचार्य महाराज का प्रवचन प्रारम्भ हुआ और प्रवचन के अंत में उन्होंने कहा कि "**पद-पद पर बहुपद मिलते हैं, पर वे दुख-पद आस्पद हैं। प्रेय यही बस एक निजी-पद, सकल गुणों का आस्पद है॥**" आप सभी मुझे मुक्ति-पथ पर आगे बढ़ने दें और इन सभी पदों से मुक्त रखें। आप सभी के लिए मेरा यही आदेश, उपदेश और संदेश है।

सभा में सन्नाटा छा गया। सभी की आँखें पद के प्रति आचार्य महाराज की निःस्पृहता देखकर हर्ष व विस्मय से भीग गईं।

सागर (अप्रैल, 1980)

निर्मलता

सागर के वर्णी भवन, मोराजी में आचार्य महाराज के सान्निध्य में ग्रीष्म कालीन वाचना चल रही थी। गर्मी पूरे जोर पर थी। नौ बजे तक इतनी कड़ी धूप हो जाती थी कि सड़क पर निकलना और नंगे पैर चलना मुश्किल हो जाता था। आहार-चर्या का यही समय था। आचार्य महाराज आहार-चर्या के लिए प्रायः मोराजी भवन से बाहर निकल कर शहर में चले जाते थे। मोराजी भवन में ठहरना बहुत कम हो पाता था। पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य का निवास मोराजी भवन में ही था और वे पड़गाहन के लिए रोज खड़े होते थे। उनके यहाँ आहार का अवसर कभी-कभी आ पाता था।

एक दिन जैसे ही दोपहर के सामायिक से पहले ईर्यापथ प्रतिक्रमण पूरा हुआ, पं. जी, आचार्य महाराज के चरणों में पहुँच गए और अत्यन्त सरलता और विनय से सहज ही कह दिया कि 'महाराज जब ततूरी (कड़ी धूप से जमीन गर्म होना) बहुत होने लगी है, आप चर्या के लिए दूर मत जाया करें।' सभी लोग उनका आशय समझ गए। आचार्य महाराज भी यह सुनते ही हँसने लगे। आज भी इस घटना की स्मृति से मन आचार्य महाराज के प्रति अगाध श्रद्धा से झुक जाता है। उनके आचरण की निर्मलता और अगाध ज्ञान का ही यह प्रतिफल है कि विद्वान् जन भी उनका सामीप्य पाने के लिए आतुर रहते हैं।

सागर (1980)

मुनि श्री क्षमासागरकृत 'आत्मान्वेषी' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधिमरण : तुलना एवं समीक्षा

प्रो. (डॉ.) सागरमल जैन

प्रो. डॉ. सागरमल जी वर्तमान समय के मूर्धन्य श्वेताम्बर विद्वान् हैं। प्रस्तुत लेख में उन्होंने जैनधर्म के समाधिमरण (सल्लेखना) और बौद्ध एवं हिन्दू धर्मों में मान्य ऐच्छिकमरण का तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक अध्ययन किया है, जो युक्तिसंगत एवं ज्ञानवर्धक है। दिगम्बर जैन परम्परा में समाधिमरण का जो स्वरूप है, वही श्वेताम्बर परम्परा में भी है, तथापि संथारा का 'सागारी' भेद श्वेताम्बर-परम्परा में ही उपलब्ध होता है।

सम्पादक

जैन परम्परा के सामान्य आचार नियमों में संलेखना या संथारा (मृत्युवरण) एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। जैन गृहस्थ-उपासकों एवं श्रमण-साधकों, दोनों के लिए स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण का विधान जैन आगमों में उपलब्ध है। जैन आगमसाहित्य ऐसे साधकों की जीवन गाथाओं से भरा पड़ा है, जिन्होंने समाधिमरण का व्रत ग्रहण किया था।

साधकों के प्रति महावीर का सन्देश यही था कि मृत्यु के उपस्थित होने पर शरीरादि से अनासक्त होकर उसे आलिंगन दे दो। इसी अनासक्त मृत्यु की कला को महावीर ने सल्लेखनाव्रत कहा है। आचार्य समन्तभद्र सल्लेखना की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि आपत्तियों, अकालों, अतिवृद्धावस्था एवं असाध्य रोगों में शरीर त्याग करने को सल्लेखना कहते है,[१] अर्थात् जिन स्थितियों में मृत्यु अनिवार्य सी हो गई हो उन परिस्थितियों में मृत्यु के भय से निर्भय होकर देहासक्ति का विसर्जन कर मृत्यु का स्वागत करना ही सल्लेखनाव्रत है।

समाधिमरण के भेद आगम

जैन आगम ग्रन्थों में मृत्युवरण के अवसरों की अपेक्षा के आधार पर समाधि-मरण के दो प्रकार माने गये है- 1. सागारी संथारा, और 2. सामान्य संथारा।

सागारी संथारा - जब अकस्मात् कोई ऐसी विपत्ति उपस्थित हो, जिसमें से जीवित बच निकलना सम्भव प्रतीत न हो, जैसे आग में गिर जाना, जल में डूबने जैसी स्थिति हो जाना अथवा हिंसक पशु या **किसी ऐसे दुष्ट व्यक्ति के अधिकार में फँस जाना जहाँ सदाचार से पतित होने की सम्भावना हो, ऐसे संकटपूर्ण अवसरों पर जो संथारा, ग्रहण किया जाता है**, वह सागारी संथारा कहलाता है। यदि व्यक्ति उस विपत्ति या संकटपूर्ण स्थिति से बाहर हो जाता है तो वह पुनः देह-रक्षण के सामान्य क्रम को चालू रख सकता है। संक्षेप में अकस्मात् मृत्यु का अवसर उपस्थित हो जाने पर, जो संथारा ग्रहण किया जाता है, वह सागारी संथारा मृत्यु-पर्यन्त के लिए नहीं, वरन् परिस्थिति-विशेष के लिए होता है अतः उस परिस्थिति-विशेष के समाप्त हो जाने पर उस व्रत की मर्यादा भी समाप्त हो जाती है।[२]

सामान्य संथारा - जब स्वाभाविक जरावस्था अथवा असाध्य रोग के कारण पुनः स्वस्थ होकर जीवित रहने की समस्त आशाएँ धूमिल हो गयी हों, तब यावज्जीवन जो देहासक्ति एवं शरीर-पोषण के प्रयत्नों का त्याग किया जाता है और जो देहपात पर ही पूर्ण होता है वह सामान्य संथारा है। सामान्य संथारा ग्रहण करने के लिए जैन आगमों में निम्न स्थितियाँ आवश्यक मानी गयी हैं-

जब शरीर की सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों के सम्पादन करने में अयोग्य हो गयी हों, जब शरीर का माँस एवं शोणित सूख जाने से शरीर अस्थिपंजर मात्र रह गया हो, पचन-पाचन, आहार-निहार आदि शारीरिक क्रियाएँ शिथिल हो गयी हों और इनके कारण साधना और संयम का परिपालन सम्यक् रीति से होना सम्भव नहीं हो, इस प्रकार मृत्यु का जीवन की देहली पर उपस्थित हो जाने पर ही सामान्य संथारा ग्रहण किया जा सकता है।[३]

बौद्ध परम्परा में मृत्युवरण

यद्यपि बुद्ध ने जैन परम्परा के समान ही धार्मिक आत्महत्याओं को अनुचित माना है, तथापि बौद्ध साहित्य में कुछ ऐसे सन्दर्भ अवश्य हैं, जो स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण का समर्थन करते है। संयुक्तनिकाय में असाध्य रोग से पीड़ित भिक्षु वक्कलि कुलपुत्र[४], भिक्षु छन्न[५] द्वारा की गई आत्महत्याओं का समर्थन स्वयं बुद्ध ने किया था और उन्हें निर्दोष कह कर दोनों ही भिक्षुओं को परिनिर्वाण प्राप्त करनेवाला बताया था। जापानी बौद्धों में तो आज भी हरीकरी की प्रथा मृत्युवरण की सूचक है।

फिर भी जैन परम्परा और बौद्ध परम्परा में मृत्युवरण के प्रश्न को लेकर कुछ अन्तर भी है। प्रथम तो यह कि जैन परम्परा के विपरीत **बौद्ध परम्परा में शस्त्रवध से तत्काल ही मृत्युवरण कर लिया जाता है।** जैन आचार्यों ने शस्त्रवध के द्वारा तात्कालिक मृत्युवरण का विरोध इसलिए किया था कि उन्हें उसमें मरणाकांक्षा की सम्भावना प्रतीत हुई। उनके अनुसार **यदि मरणाकांक्षा नहीं है, तो फिर मरण के लिए उतनी आतुरता क्यों?** इस प्रकार जहाँ बौद्ध परम्परा शस्त्रवध के द्वारा की गई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्महत्या का समर्थन करती है, वहीं जैन परम्परा उसे अस्वीकार करती है। इस सन्दर्भ में बौद्ध परम्परा वैदिक परम्परा के अधिक निकट है।

वैदिक परम्परा में मृत्युवरण

सामान्यतया हिन्दू धर्मशास्त्रों में आत्महत्या को महापाप माना गया है। पाराशरस्मृति (४/१/२) में कहा गया है कि जो क्लेश, भय, घमण्ड और क्रोध के वशीभूत होकर आत्महत्या करता है, वह साठ हजार वर्ष तक नरकवास करता है, लेकिन इनके अतिरिक्त हिन्दू धर्मशास्त्रों में ऐसे भी अनेक सन्दर्भ हैं, जो स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण का समर्थन करते हैं। प्रायश्चित के निमित्त से मृत्युवरण का समर्थन मनुस्मृति (११/९०-९१) याज्ञवल्क्यस्मृति (३/२५३), गौतमस्मृति (२३/१), वशिष्ठधर्मसूत्र (२०/२२, १३/१४) और आपस्तम्बसूत्र (१/९/२५/१-३, ६) में भी किया गया है। मात्र इतना ही नहीं, हिन्दू धर्मशास्त्रों में भी ऐसे अनेक स्थल हैं, जहाँ मृत्युवरण को पवित्र एवं धार्मिक आचारण के रूप में देखा गया है। महाभारत के अनुशासनपर्व (२५/६२-६४), वनपर्व (८५/८३) एवं मत्स्यपुराण (१८६/३४/३५) में अग्निप्रवेश, जलप्रवेश, गिरिपतन, विषप्रयोग या उपवास आदि के द्वारा देहत्याग करने पर ब्रह्मलोक या मुक्ति प्राप्त होती है ऐसा माना गया है। अपरार्क ने प्राचीन आचार्यों के मत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि यदि कोई गृहस्थ असाध्य रोग से पीड़ित हो, जिसने अपने कर्तव्य पूरे कर लिए हों, वह महाप्रस्थान हेतु अग्नि या जल में प्रवेश कर अथवा पर्वतशिखर से गिरकर अपने प्राणों की आहुति दे सकता है। ऐसा करके वह कोई पाप नहीं करता। उसकी मृत्यु तो तपों से भी बढ़कर है। शास्त्रानुमोदित कर्तव्यों के पालन में अशक्त होने पर जीवन जीने की इच्छा रखना व्यर्थ है।[६] श्रीमद्भागवत के ११वें स्कन्ध के १८ वें अध्याय में भी स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण को स्वीकार किया गया है। वैदिक परम्परा में स्वेच्छा मृत्युवरण का समर्थन न केवल शास्त्रीय आधारों पर हुआ है, वरन् व्यावहारिक जीवन में इसके अनेक उदाहरण भी परम्परा में उपलब्ध हैं। **महाभारत में पाण्डवों के द्वारा हिमालय-यात्रा में किया गया देहपात मृत्युवरण का एक प्रमुख उदाहरण है।** डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे ने वाल्मीकि रामायण एवं अन्य वैदिक धर्मग्रन्थों तथा शिलालेखों के आधार पर शरभंग, महाराजा रघु, कलचुरी के राजा गांगेय, चंदेल कुल के राजा गंगदेव, चालुक्यराज सोमेश्वर आदि के स्वेच्छा मृत्युवरण का उल्लेख किया है।[७] मैगस्थनीज ने भी ईसवीपूर्व चतुर्थ शताब्दी में प्रचलित स्वेच्छामरण का उल्लेख किया है। प्रयोग में अक्षयवट से कूद कर गंगा में प्रणान्त करने की प्रथा तथा काशी में करवत लेने की प्रथा वैदिक परम्परा में मध्य युग तक भी काफी प्रचलित थी।[८] यद्यपि ये प्रथाएँ आज नामशेष हो गयी हैं, फिर भी **वैदिक सन्यासियों द्वारा जीवित समाधि लेने की प्रथा आज भी जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र है।**

इस प्रकार हम देखते है कि न केवल जैन और बौद्ध परम्पराओं में, वरन् वैदिक परम्परा में भी मृत्युवरण को समर्थन दिया गया है। लेकिन जैन और वैदिक परम्पराओं में प्रमुख अन्तर यह है कि जहाँ वैदिक परम्परा में जल एवं अग्नि में प्रवेश, गिरिशिखर से गिरना, विष या शस्त्र प्रयोग आदि विविध साधनों से मृत्युवरण का विधान मिलता है, वहाँ जैन परम्परा में सामान्यतया केवल उपवास द्वारा ही देहत्याग का समर्थन मिलता है। जैन परम्परा शस्त्र आदि से होने वाली तात्कालिक मृत्यु की अपेक्षा उपवास द्वारा होने वलाी क्रमिक मृत्यु को ही अधिक प्रशस्त मानती है। **यद्यपि ब्रह्मचर्य की रक्षा आदि कुछ प्रसंगों में तात्कालिक मृत्युवरण को स्वीकार किया गया है,** तथापि सामान्यतया जैन आचार्यों ने तात्कालिक मृत्युवरण की जिसे प्रकारान्तर से आत्महत्या भी कहा जा सकता है, आलोचना की है। आचार्य समन्तभद्र ने गिरिपतन या अग्निप्रवेश के द्वारा किये जानेवाले मृत्युवरण को लोकमूढ़ता कहा है।[९] **जैन आचार्यों की दृष्टि में समाधि-मरण का अर्थ मृत्यु की कामना नहीं, वरन् देहासक्ति का परित्याग है।** उनके अनुसार तो जिस प्रकार जीवन की आकांक्षा दूषित मानी गई है, उसी प्रकार **मृत्यु की आकांक्षा को भी दूषित माना गया है।**

समाधिमरण और आत्महत्या

जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों ही परम्पराओं में जीविताशा और मरणाशा दोनों को अनुचित माना गया है, तो यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से खड़ा होता है कि क्या समाधिमरण मरणाकांक्षा नहीं है? वस्तुत: यह न तो मरणाकांक्षा है और न आत्महत्या ही। व्यक्ति आत्महत्या या तो क्रोध के वशीभूत होकर करता है या फिर सम्मान या हितों को गहरी चोट पहुँचने पर अथवा जीवन से निराश हो जाने पर करता है, लेकिन ये सभी **चित्त की सांवेगिक अवस्थाएँ हैं, जब कि समाधिमरण तो चित्त के समत्व की अवस्था है।** अत: वह आत्महत्या नहीं कही जा सकती। दूसरे आत्महत्या में मृत्यु को निमंत्रण दिया जाता है। व्यक्ति के अन्तस् में मरने की इच्छा छिपी हुई होती है, लेकिन समाधिमरण में मरणकांक्षा का अभाव ही अपेक्षित है, क्योंकि समाधिमरण के प्रतिज्ञा-सूत्र में ही साधक यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं मृत्यु की आकांक्षा से रहित होकर आत्मरमण करूँगा (काल अकंखमाणं विहरामि)। यदि समाधिमरण में मरने की इच्छा ही प्रमुख होती, तो उसके प्रतिज्ञा-सूत्र में इन शब्दों के रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। जैन विचारकों ने तो मरणाकांक्षा को समाधिमरण का दोष ही माना है। अत: समाधिमरण को आत्महत्या नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा जा सकता। जैन विचारकों ने इसीलिए सामान्य स्थिति में शस्त्रवध, अग्निप्रवेश या गिरिपतन आदि साधनों के द्वारा तात्कालिक मृत्युवरण को अनुचित ही माना है, क्योंकि उनके पीछे मरणाकांक्षा की सम्भावना रही हुई है। समाधिमरण में आहारादि के त्याग में मृत्यु की चाह नहीं होती, मात्र देह-पोषण का विसर्जन किया जाता है। मृत्यु उसका परिणाम अवश्य है, लेकिन उसकी आकांक्षा नहीं, जैसे व्रण की चीरफाड़ के परिणामस्वरूप वेदना अवश्य होती है, लेकिन उसमें वेदना की आकांक्षा नहीं होती है। जैन आचार्य ने कहा है कि समाधिमरण की क्रिया मरण के निमित्त नहीं होकर उसके प्रतिकार के लिए है, जैसे व्रण का चीरना वेदना के निमित्त नहीं होकर वेदना के प्रतिकार के लिए होता है। यदि ऑपरेशन की क्रिया में हो जाने वाली मृत्यु हत्या नहीं हैं, तो फिर समाधिमरण में हो जाने वाली मृत्यु आत्महत्या कैसे हो सकती है? एक दैहिक जीवन की रक्षा के लिए है, तो दूसरी आध्यात्मिक जीवन की रक्षा के लिए है। समाधिमरण और आत्महत्या में मौलिक अन्तर है। आत्महत्या में व्यक्ति जीवन के संघर्षों से ऊब कर जीवन से भागना चाहता है, उसके मूल में कायरता है, **जबकि समाधिमरण में देह और संयम की रक्षा के अनिवार्य विकल्पों में से संयम की रक्षा के विकल्प को चुनकर मृत्यु का साहसपूर्वक सामना किया जाता है।** समाधिमरण में जीवन से भागने का प्रयास नहीं, वरन् जीवन-बेला की अन्तिम संध्या में द्वार पर खड़ी हुई मृत्यु का स्वागत है। आत्महत्या में जीवन से भय होता है, जबकि समाधिमरण में मृत्यु से निर्भयता होती है। आत्महत्या असमय मृत्यु का आमंत्रण है, जबकि संथारा या समाधिमरण मात्र मृत्यु के उपस्थित होने पर उसका सहर्ष आलिंगन है। आत्महत्या के मूल में या तो भय होता है या कामना, जबकि समाधिमरण में भय और कामना दोनों की अनुपस्थिति आवश्यक होती है।

समाधिमरण आत्म-बलिदान से भी भिन्न है। पशु-बलि के समान आत्म-बलि की प्रथा भी शैव और शक्ति सम्प्रदायों में प्रचलित रही है। लेकिन समाधिमरण को आत्म-बलिदान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि **आत्म-बलिदान** भी भावना का अतिरेक है। भावातिरेक आत्म-बलिदान की अनिवार्यता है, जबकि समाधिमरण में भावातिरेक नहीं, वरन् विवेक का प्रकटन आवश्यक है।

समाधिमरण के प्रत्यय के आधार पर आलोचकों ने यह कहने का प्रयास भी किया है कि जैनदर्शन जीवन से इकरार नहीं करता, वरन् जीवन से इनकार करता है, लेकिन गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह धारण भ्रान्त ही सिद्ध होती है। उपाध्याय अमर मुनि जी लिखते हैं- वह (जैन दर्शन) जीवन से इनकार नहीं करता है, अपितु जीवन के मिथ्या मोह से इनकार करता है। जीवन जीने में यदि कोई महत्त्वपूर्ण लाभ है और वह स्व-पर की हित साधना में उपयोगी है, तो जीवन सर्वतोभावेन संरक्षणीय है। आचार्य भद्रबाहु भी ओघनिर्युक्ति में कहते हैं- साधक का देह ही नहीं रहा तो संयम कैसे रहेगा, अत: संयम की साधना के लिए देह का परिपालन इष्ट है।[१०] लेकिन देह के परिगलन की क्रिया संयम के निमित्त है, अत: देह का ऐसा परिपालन जिसमें संयम ही समाप्त हो, किस काम का! साधक का जीवन न तो जीने के लिए है, न मरण के लिए है। वह तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सिद्धि के लिए है। यदि जीवन से ज्ञानादि, आध्यात्मिक गुण की सिद्धि एवं शुद्धता की वृद्धि हो, तो जीवन की रक्षा करते हुए वैसा करना चाहिए, किन्तु यदि जीवन से भी ज्ञानादि की अभीष्ट सिद्धि नहीं होती हो, तो मरण भी साधक के लिए शिरसा श्लाघनीय है।

समाधिकरण का मूल्यांकन

स्वेच्छामरण के संबंध में पहला प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य को प्राणांत करने का नैतिक अधिकार है? पं० सुखलाल जी ने जैन-दृष्टि से इन प्रश्न का जो उत्तर दिया है, उसका संक्षिप्त रूप यह है कि जैनधर्म सामान्य स्थितियों में, चाहे वह लौकिक हो या धार्मिक, प्राणांत करने का अधिकार नहीं देता है, लेकिन जब देह और आध्यात्मिक सद्गुण, इनमें से किसी एक की पसंदगी करने का विषम समय आ गया हो, तो देह का त्याग करके भी अपनी विशुद्ध आध्यात्मिक स्थिति को बचाया जा सकता है, **जैसे सती स्त्री दूसरा मार्ग न देखकर देहनाश के द्वारा भी अपने सतीत्व की रक्षा कर लेती है।**[११] जब तक देह और संयम दोनों की समानभाव से रक्षा हो सके, तब तक दोनों की रक्षा कर्त्तव्य है, पर जब एक की ही पसंदगी करने का सवाल आये, तो सामान्य व्यक्ति देह की रक्षा पसन्द करेंगे और आध्यात्मिक संयम की उपेक्षा करेंगे, जबकि समाधिमरण का अधिकारी इससे उल्टा करेगा। जीवन तो दोनों ही हैं- दैहिक और आध्यात्मिक। आध्यात्मिक जीवन जीने वालों के लिए प्राणान्त या अनशन की इजाजत है, पामरों, भयभीतों और लालचियों के लिए नहीं। **भयंकर दुष्काल आदि में देहरक्षा के निमित्त संयम से पतित होने का अवसर आ जाये या अनिवार्य रूप से मरण लानेवाली बीमारियों के कारण खुद को और दूसरों को निरर्थक परेशानी होती हो, फिर संयम और सद्गुण की रक्षा संभव न हो, तब मात्र समभाव की दृष्टि से संथारे या स्वेच्छामरण का विधान है।** इस प्रकार जैनदर्शन मात्र सद्गुणों की रक्षा के निमित्त प्राणान्त करने की अनुमति देता है, अन्य स्थितियों में नहीं। यदि सद्गुणों की रक्षा के निमित्त देह का विसर्जन किया जाता है, तो वह अनैतिक नहीं हो सकता। **नैतिकता की रक्षा के लिए किया गया देहविसर्जन अनैतिक**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसे होगा ?

जैन दर्शन के इस दृष्टिकोण का **समर्थन गीता में भी** उपलब्ध है। गीता कहती है कि यदि जीवित रहकर (आध्यात्मिक सद्‌गुणों के विनाश के कारण) अपकीर्ति की संभावना हो तो उस जीवन से मरण ही श्रेष्ठ है।[१२]

आदरणीय **काका कालेकर** लिखते हैं कि मृत्यु शिकारी के समान हमारे पीछे पड़े और हम बचने के लिए भागते जायें यह दृश्य मनुष्य को शोभा नहीं देता। जीवन का प्रयोजन समाप्त हुआ, ऐसा देखते ही मृत्यु को आदरणीय अतिथि समझ कर उसे आमंत्रण देना, उसका स्वागत करना और इस तरह से **स्वेच्छा-स्वीकृत मरण के द्वारा जीवन को कृतार्थ करना, यह एक सुन्दर आदर्श है।** आत्महत्या को नैतिक दृष्टि से उचित मानते हुए वे कहते हैं कि इसे हम आत्महत्या नहीं कहें, निराश होकर, कायर होकर या डर के मारे शरीर छोड़ देना यह एक किस्म की हार ही है। उसे हम जीवन-द्रोह भी कह सकते हैं। सब धर्मों ने आत्महत्या की निन्दा की है, लेकिन जब मनुष्य सोचता है कि उसके जीवन का प्रयोजन पूर्ण हुआ, ज्यादा जीने की आवश्यकता नहीं रही, तब वह **आत्म-साधना के अन्तिम रूप के तौर पर अगर शरीर छोड़ दे, तो वह उसका हक है। मैं स्वयं व्यक्तिशः इस अधिकार का समर्थन करता हूँ।**[१३]

समकालीन विचारकों में आदरणीय धर्मानन्द कौसाम्बी और महात्मा गाँधी ने भी मनुष्य को प्राणान्त करने के अधिकार का समर्थन नैतिक दृष्टि से किया था। महात्मा जी का कथन है कि जब मनुष्य पापाचार का वेग बलवत्तर हुआ देखता है और आत्महत्या के बिना अपने को पाप से नहीं बचा सकता, तब होनेवाले पाप से बचने के लिए उसे आत्महत्या करने का अधिकार है।[१४] **कौसम्बीजी ने भी अपनी पुस्तक 'पार्श्वनाथ का चार्तुयाम धर्म' में स्वेच्छामरण का समर्थन किया था** और उसकी भूमिका में पं० सुखलाल जी ने 'उन्होंने अपनी स्वेच्छा-मरण की इच्छा को भी अभिव्यक्त किया था' यह उद्‌धृत किया है।[१५]

काका कालेकर स्वेच्छामरण को महत्वपूर्ण मानते हुए जैनपरम्परा के समान ही कहते हैं कि जब तक यह शरीर मुक्ति का साधन हो सकता है, तब तक अपरिहार्य हिंसा को सहन करके भी इसे जिलाना चाहिए। **जब हम यह देखें कि आत्मा के अपने विकास के प्रयत्न में शरीर बाधा रूप ही होता है, तब हमें उसे छोड़ना चाहिए।** जो किसी हालत में जीना चाहता है, उसकी निष्ठा तो स्पष्ट है ही, लेकिन जो जीवन से उब कर अथवा केवल मरने के लिए मरना चाहता है, तो उसमें भी विकृत शरीर-निष्ठा है। जो मरण से डरता है और जो मरण ही चाहता है, वे दोनों जीवन का रहस्य नहीं जानते। व्यापक जीवन में जीना और मरना दोनों का अन्तर्भाव होता है, उन्मेष और निमेष दोनों क्रियाएँ मिलकर ही देखने की एक क्रिया पूरी होती है।[१६]

भारतीय नैतिक चिन्तन में केवल जीवन जीने की कला पर ही नहीं, वरन् उसमें जीवन की कला के साथ मरण की कला पर भी विचार किया गया है। **नैतिक चिन्तन की दृष्टि से किस प्रकार जीवन जीना चाहिए यही महत्वपूर्ण नहीं है, वरन् किस प्रकार मरना चाहिए यह भी मूल्यावान् है। मृत्यु की कला जीवन की कला से भी महत्त्वपूर्ण है, आदर्श मृत्यु ही नैतिक जीवन की कसौटी है।** जीवन का जीना तो विद्यार्थी के सूत्रकालीन अध्ययन के समान है, जबकि मृत्यु परीक्षा का अवसर है। **हम जीवन की कमाई का अंतिम सौदा मृत्यु के समय करते हैं। यहाँ चूके तो फिर पछताना होता है** और इसी अपेक्षा से कहा जा सकता है कि जीवन की कला की अपेक्षा मृत्यु की कला अधिक मूल्यवान है। भारतीय नैतिक चिन्तन के अनुसार मृत्यु का अवसर ऐसा अवसर है, जब हममें से अधिकांश अपने भावी जीवन का चुनाव करते हैं। गीता का कथन है कि मृत्यु के समय जैसी भावना होती है, वैसी ही योनि जीव प्राप्त करता है। (१८/५-६)। जैनपरम्परा में खन्धक मुनि की कथा यही बताती है कि जीवन भर कठोर साधना करनेवाला महान् साधक, जिसने अपनी प्रेरणा एवं उद्‌बोधन से अपने सहचारी पाँच सौ साधक शिष्यों को उपस्थित मृत्यु की विषम परिस्थिति में समत्व की साधना के द्वारा निर्वाण का अमृतपान कराया, वही साधक स्वयं की मृत्यु के अवसर पर क्रोध के वशीभूत हो किस प्रकार अपने साधना-पथ से विचलित हो गया। वैदिक परम्परा में जड़भरत का कथानक भी यही बताता है कि इतने महान् साधक को भी मरणबेला में हरिण पर आसक्ति रखने के कारण पशु योनि को प्राप्त होना पड़ा। उपर्युक्त कथानक हमारे सामने मृत्यु का मूल्य उपस्थित कर देते हैं। मृत्यु इस जीवन की साधना का परीक्षा काल है। वह इस जीवन में लक्ष्योपलब्धि का अन्तिम अवसर और भावी जीवन की कामना का आरम्भ बिन्दु है। इस प्रकार वह अपने में दो जीवनों का मूल्य सँजोए हुए है। मरण जीवन का अवश्यम्भावी अंग है। उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। वह जीवन का उपसंहार है, जिसे सुन्दर बनाना हमारा एक आवश्यक कर्त्तव्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्प्रतियुग के प्रबुद्ध विचारक भी समाधिमरण को अनैतिक नहीं मानते। अतः जैन दर्शन पर लगाया जानेवाला यह आक्षेप कि वह जीवन के मूल्य को अस्वीकार करता है, उचित नहीं माना जा सकता। वस्तुतः समाधिमरण पर जो आपेक्ष लगाये जाते हैं, उनका सम्बन्ध समाधिमरण से न होकर आत्महत्या से है। कुछ विचारकों ने समाधिमरण और आत्महत्या के वास्तविक अन्तर को नहीं समझा और इसी आधार पर समाधिमरण को अनैतिक कहने का प्रयास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया, लेकिन जैसा कि हम पूर्व में सिद्ध कर चुके हैं, समाधिमरण या मृत्युवरण आत्महत्या नहीं है और इसलिए उसे अनैतिक भी नहीं कहा जा सकता। जैन आचार्यों ने स्वयं भी आत्महत्या को अनैतिक माना है, लेकिन उनके अनुसार आत्महत्या समाधिमरण से भिन्न है।

डॉ० ईश्वरचन्द्र ने जीवनमुक्त व्यक्ति के स्वेच्छामरण को तो आत्महत्या नहीं माना है, लेकिन उन्होंने जैनपरम्परा में किये जाने वाले संथारे को आत्महत्या की कोटि में रख कर उसे अनैतिक भी बताया है।[१७] इस सम्बन्ध में उनके तर्क का पहला भाग यह है कि स्वेच्छामरण का व्रत लेनेवाले सामान्य जैन मुनि जीवनमुक्त एवं अलौकिक शक्ति से युक्त नहीं होते और अपूर्णता की दशा में लिया गया आमरण व्रत (संथारा) नैतिक नहीं हो सकता। अपने तर्क के दूसरे भाग में वे कहते हैं कि जैनपरम्परा में स्वेच्छामृत्युमरण (संथारा) करने में यथार्थता की अपेक्षा आडम्बर अधिक होता है, इसलिए वह अनैतिक भी है। जहाँ तक उनके इस दृष्टिकोण का प्रश्न है कि जीवनमुक्त एवं अलौकिक शक्तिसम्पन्न व्यक्ति ही स्वेच्छामरण का अधिकारी है, हम सहमत नहीं हैं। वस्तुत: स्वेच्छामरण की आवश्यकता उस व्यक्ति के लिए नहीं है, जो जीवनमुक्त है और जिसकी देहासक्ति समाप्त हो गई है, वरन् उस व्यक्ति के लिए है, जिसमें देहासक्ति रही हुई है, क्योंकि समाधिमरण तो इसी देहासक्ति को समाप्त करने के लिए है। समाधिमरण एक साधन है, इसलिए वह जीवनमुक्त के लिए (सिद्ध के लिए) आवश्यक नहीं है। जीवनमुक्त को तो समाधिमरण सहज ही प्राप्त होता है। उसके लिए इसकी साधना का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। जहाँ तक उनके इस आक्षेप का प्रश्न है कि समाधिमरण में यथार्थ की आपेक्षा आडम्बर ही अधिक परिलक्षित होता है, उसमें आंशिक सत्यता अवश्य हो सकती है, लेकिन इसका सम्बन्ध संथारे या समाधिमरण के सिद्धांत से नहीं, वरन् उसके वर्तमान में प्रचलित विकृत रूप से है, लेकिन इस आधार पर उसके सैद्धांतिक मूल्य में कोई कमी नहीं आती है। यदि व्यावहारिक जीवन में अनेक व्यक्ति असत्य बोलते हैं, तो क्या उससे सत्य के मूल्य पर कोई आँच आती है? वस्तुत: स्वेच्छामरण के सैद्धांतिक मूल्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

मृत्युवरण तो मृत्यु की वह कला है, जिसमें न केवल जीवन ही सार्थक होता है, वरन् मरण भी सार्थक हो जाता है। आदरणीय काका कालेकर ने खलील जिब्रान का यह वचन उद्धृत किया है कि "एक आदमी ने आत्मरक्षा के हेतु खुदकशी की, आत्महत्या की, यह वचन सुनने में विचित्र सा लगता है।"[१८] आत्महत्या से आत्मरक्षा का क्या सम्बन्ध हो सकता है? वस्तुत: यहाँ आत्मरक्षा का अर्थ आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का संरक्षण है और आत्महत्या का मतलब शरीर का विसर्जन। जब नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संरक्षण के लिए शारीरिक मूल्यों का विसर्जन आवश्यक हो, तो उस स्थिति में देह-विसर्जन या स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण ही उचित है। **आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा प्राणरक्षा से श्रेष्ठ है। गीता में स्वयं अकीर्तिकर जीवन की अपेक्षा मरण को श्रेष्ठ मान कर ऐसा ही संकेत दिया है।**[१९] काका कालेकर के शब्दों में, जब मनुष्य देखता है कि विशिष्ट परिस्थिति में यदि जीना है, तो हीन स्थिति और हीन विचार या हीन सिद्धांत मान्य रखना जरूरी ही है, **तब श्रेष्ठ पुरुष कहता है कि जीने से नहीं, मर कर ही आत्मरक्षा होती है।**[२०]

वस्तुत: समाधिमरण का यह व्रत हमारे आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों के संरक्षण के लिए ही लिया जाता है और इसलिए यह पूर्णत: नैतिक है।

सन्दर्भ :

१. उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निष्प्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहु: संल्लेखनामार्या:।
रत्नकरण्डश्रावकाचार।

२. देखिए - अतंकृतदशांगसूत्र के अर्जुनमाली के अध्याय में सुदर्शन सेठ के द्वारा किया गया सागारी संथारा।

३. देखिए - अंतकृतदशांगसूत्र, संपा. मधुकरमुनि, प्रका. श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, १९८१, वर्ग ८ अध्याय १।

४. संयुक्तनिकाय/ अनु. जगदीश कश्यप एवं धर्मरक्षित / महाबोधि सभा सारनाथ, बनारस/१९४५ई०/२१/२/४/५।

५. वही ३४/२/४/४।

६. धर्मशास्त्र का इतिहास पृ. ४८८। अपरार्क पृ. ५३६

७. धर्मशास्त्र का इतिहास/पृ.४८७।

८. धर्मशास्त्र का इतिहास/पृ.४८८।

९. रत्नकरण्डश्रावकाचार/२२।

१०. संजमहेउं देहो धारिज्जइ सो कओ उ तदभावे।
संजम-फाइनिमित्तं देह परिपालणा इट्ठा॥ ४७॥ ओधनिर्युक्ति/४

११. दर्शन और चिन्तन / पं.सुखलाल संधवी/ गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद/ १९५७/ खण्ड २/ पृ.५३३-३४।

१२. "संभावितस्य चाकीर्तिमरणदतिरिच्यते।" २/३४।

१३. परमसखा मृत्यु / काका कालेलकर / प्रका. सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली/१९७९/पृ.३१।

१४. वही/पृ.२६।

१५. पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म/भूमिका।

१६. परमसखा मृत्यु/काका कालेलकर / पृ.१९।

१७. पाश्चात्य आचार विज्ञान का आलोचनात्मक अध्ययन/पृ.२७३।

१८. परमसखा मृत्यु/काका कालेलकर/पृ. ४३।

१९. गीता २/३४।

२०. परमसखा मृत्यु/काका कालेलकर / पृ.४३।

निदेशक - प्राच्य विद्यापीठ
३५, ओसवाल सहरी
शाजापुर - ४६५००१ म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्या प्रचारकों से सावधान

पं. पुलक गोयल शास्त्री, इंदौर

महाराष्ट्र में **भरमू पाटील (मजले)** के नाम से मराठी भाषा में एक पत्रक बाँटा गया है। मुझे भी वह पत्रक पढ़ने का मौका मिला, अत: मैं उस पत्र पर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर कर रहा हूँ। मुझे आज से 12-15 वर्ष पूर्व का वह दिन अच्छी प्रकार याद है, जिस दिन वर्तमान के एक शिथिलाचारी आचार्य द्वारा दिल्ली के एक सज्जन के माध्यम से भारत के 7-8 आचार्यों के नाम पत्र भिजवाये गये थे। **पत्र में लिखे वक्तव्य का आशय था कि पू. विद्यासागर जी महाराज का प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। अगर हमने उनके प्रभाव पर रोकथाम नहीं लगायी, तो हम सब शिथिलाचारी साधु आचार्य विद्यासागर के तूफान में उड़ जायेंगे। अत: एक ही उपाय है कि बीसपंथ का झगड़ा उठाकर दक्षिण भारत की भोली-भाली जनता को बहकाया जाये और आचार्य विद्यासागर का विरोध कराकर अपने अस्तित्व को कायम रखा जाये।**

सच तो यह है कि आज से पंद्रह वर्ष पूर्व, तेरह-बीस पंथ का कोई झगड़ा नहीं था। परंतु जब से यह गुप्त पत्र भारत के 7/8 आचार्यों को भिजवाया गया है, तभी से शिथिलाचारी साधुओं द्वारा बीसपंथ की आड़ में अपने अस्तित्व को कायम रखने की कोशिश की जा रही है। समाज को गलत दिशानिर्देश दिये जा रहे हैं। शास्त्रविरुद्ध चर्चाएँ हो रही हैं। झूठी बातों के परचे बँटवाये जा रहे हैं। देवी-देवताओं के मंदिर बनवाये जा रहे हैं और गृहीत मिथ्यात्व का प्रचार किया जा रहा है। **हम जैनियों के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है कि कषाय मिटाने का कार्य करने वाले दिगम्बर जैन साधु ही आज झगड़ा बढ़ाने और कषाय उत्पन्न कराने में कारण बने हुए हैं।** आज 13-20 पंथ का झगड़ा, पंचामृत अभिषेक, क्षेत्रपाल-पद्मावती पूजन आदि के झगड़े श्रावक नहीं कर रहे हैं परंतु **चंद शिथिलाचारी साधुगण द्वारा ही इन सब विवादों को उठाकर समाज में फूट डालने की कोशिश और अशान्ति का वातावरण बनाने का प्रयास किया जा रहा है।** यह भरमू पाटील के नाम से जो परचा बाँटा गया है वह किसी व्यक्ति का नहीं है, बल्कि एक गलत नाम लिखकर चातुर्मास करनेवाले आचार्य का ही समाज में फूट डालने के लिए किया गया गलत प्रयास है। खैर, कोई बात नहीं है। मैं उस परचे का बिंदुवार उत्तर दे रहा हूँ। ताकि समाज को भ्रमित होने का अवसर न रहे और सत्य की जानकारी हो पाये।

1. परचे में लिखा गया है कि आचार्य विद्यासागर जी के संघ के साधु अन्य संघ के किसी साधु या आर्यिका को नमोऽस्तु या वन्दना नहीं करते। यह आरोप बिलकुल गलत है। हाँ इतना अवश्य है कि पू. आचार्यश्री के संघ के सभी सदस्य शिथिलाचारी आचार्य या उनके संघ को नमोऽस्तु नहीं करते, क्योंकि आचार्य कुन्दकुन्द ने दर्शनपाहुड़ में इस प्रकार कहा है-

जे वि पडंति च तेंसि जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोअमाणाणं॥ 13॥

अर्थ - जो जानते हुए भी लज्जा, गारव या भय के कारण उन शिथिलाचारियों के चरण में पड़ते हैं, उन्हें नमोऽस्तु आदि करते हैं, उन पापों की अनुमोदना करने वाले लोगों को भी रत्नत्रय आदि की प्राप्ति नहीं होती है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने सूत्र पाहुड़ में और भी कहा है-

जह जाय रूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं॥ 18॥

अर्थ - यथाजातरूप सदृश नग्नमुद्रा के धारक मुनि, तिलतुष मात्र भी परिग्रह हाथों में ग्रहण नहीं करते और यदि थोड़ा बहुत ग्रहण करते हैं, तो निगोद जाते हैं।

इन परिस्थितियों में पूज्य आचार्यश्री के संघ के साधु, आर्यिका आदि शिथिलाचारी साधु या उनके संघ के किसी सदस्य की वंदना या समाचार कैसे कर सकते हैं?

2. यह आरोप भी बिलकुल गलत है कि पूज्य आचार्यश्री के संघ के सदस्य चा.च आ. शांतिसागरजी महाराज की जय नहीं बोलते। पू. आचार्यश्री के संघ में पूज्य आचार्य शांतिसागर जी का समाधिदिवस प्रतिवर्ष भादों सुदी दूज को मनाया जाता है। उस दिन पू. आचार्यश्री और संघ के सभी साधुगण चा.च.आ. शांतिसागरजी की जयजयकार करते हैं। यदि आप सुनना चाहें तो उस दिन का कैसेट मँगवाकर सुन सकते हैं। इस वर्ष भी यह समाधिदिवस मनाया जायेगा।

3. चातुर्मास-पत्रिका में चा.च. आ. शांतिसागर जी का फोटो न छापने का आरोप भी एकदम गलत है। मेरे पास ऐसी दसों पत्रिकाएँ सुरक्षित हैं, जिनमें आचार्य शांतिसागर जी एवं आचार्य विद्यासागर जी के चित्र दिये गये हैं।

4. पत्रक बाँटनेवाले ने तो आचार्य विद्यासागरजी की परम्परा को शुद्धाम्नाय कहा है। जब आप स्वयं ही उनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्परा को शुद्धाम्नाय कहते हैं, तो अशुद्ध परम्परा को क्यों नहीं छोड़ देते? जलाभिषेक या पंचामृताभिषेक, फल-फूल से पूजा या बादाम, लोंग, पीले चावल से पूजा हो, यदि शुद्ध आम्नाय माननेवाले जलाभिषेक करते हैं या अचित्त द्रव्य से पूजा करते हैं, तो क्या यह आगमविरुद्ध है? क्या चा.च.आ. श्री शांतिसागरजी ने जलाभिषेक को मना किया है? बादाम, पीले चावल, लोंग से पूजा करने से नवधा भक्ति नहीं मानी है? यदि ऐसा नहीं है, तब यह फलतू झगड़ा क्यों? शुद्धाम्नाय माननेवाले अचित्त पूजा करते हैं, तो वास्तव में हिंसा कम होने से सचित्त पूजा करने वालों से श्रेष्ठ ही हैं। फिर उनका विरोध क्यों?

5. यह आरोप भी बिलकुल गलत है कि वे धरणेन्द्र, पद्मावती आदि की मूर्ति हटवाते हैं। पू. आचार्य श्री कई बार कुंडलपुर एवं रामटेक आदि स्थानों पर गये और उन क्षेत्रों पर आज भी क्षेत्रपाल आदि यथायोग्य स्थान पर स्थित हैं। जब आचार्य कुंथुसागर जी एवं आर्यिका सुपार्श्वमती जी अपने प्रवचनों में क्षेत्रपाल आदि को द्वारपाल मानते हैं, तो फिर क्या इन देवी-देवताओं की अष्टद्रव्य से पूजा करना, आरती उतारना या भगवान् के समकक्ष विराजमान करना गृहीत मिथ्यात्व नहीं है? पूज्य आचार्य विद्यासागर जी ने कभी भी अपने प्रवचन आदि में क्षेत्रपाल, पद्मावती की मूर्ति हटाने की बात नहीं कही। हाँ, इतना अवश्य है कि इनको याग्य स्थान पर विराजमान करने का उपदेश देते हैं, जो सर्वथा उचित है। अत: इस संबंध में वे कुछ भी गलत नहीं करते।

6. पूज्य आचार्य विद्यासागरजी या उनके संघस्थ साधु आपके द्वारा लिखे शब्दों का कभी प्रयोग नहीं करते। उनका हमेशा यही कहना होता है कि भट्टारक क्षेत्रों की अच्छी देखभाल कर सकते हैं। अत: 8 नहीं 108 बनें अथवा 1008 भी बन जायें, परंतु आगम के अनुसार इनके क्रियाकलाप का निर्धारण होना चाहिए। श्रवणबेलगोला-वाले भट्टारक चारुकीर्ति जी ने स्वयं एक बार कहा था कि भट्टारकों के एक भी प्रतिमा नहीं होती है और हमारी कोई आचार संहिता भी नहीं है। इसीलिए तो पूज्य आचार्यश्री कहते हैं कि 'आपका कार्य तो अच्छा है परंतु **अव्रती होने पर भी पिच्छी धारण क्यों?** भट्टारकों के लिंग का निर्धारण ठीक होना चाहिए।' इस प्रकार उनका कहना आगम के अनुसार सर्वथा उचित ही है।

7. आचार्य विद्यासागरजी महाराज या उनके शिष्य आदि कहीं भी मंदिरों के मामले में कोई गलत काम नहीं करते। वे तो मंदिर में यदि कहीं वास्तु आदि का दोष होता है, तो मंदिर को निर्दोष बनाने की प्रेरणा देते हैं। **वास्तु आदि के दोष हटने पर मंदिर की शोभा में अतिशय वृद्धि हो जाती है और भक्तों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि देखी जाती है।** आप जरा साँगानेर, चाँदखेड़ी, बिजौलिया जाकर तो देखें, ये क्षेत्र इतने सुंदर और भव्य हो गये हैं कि पहचानने में ही नहीं आते। कुंडलपुर के बड़े बाबा की मूर्ति का, जो अब नये मंदिर की वेदी पर रखी जा चुकी है, जरा आप एक बार दर्शन तो करें, आप गद्गद् हो जायेंगे और दिल से सराहना करने लगेंगे। यह तो सनातन परम्परा है कि पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार हमेशा से होता आया है और होता रहेगा। यह आपने बिलकुल गलत लिखा है कि उस मूर्ति के अगल-बगल में स्थित यक्ष-यक्षिणी को काटकर रख दिया गया है। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। सारी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं, वे उचित स्थान पर विराजमान होंगी। आपने सफेद झूठ बोलकर लोगों को गुमराह करने का जो अपराध किया है, वह अक्षम्य है।

8. '**धर्ममंगल**' पत्रिका को अपशब्द मत कहिए, मत कोसिए। उसके उपकार को याद कीजिए। इस पत्रिका को कोई पा नहीं सकता। **इस पत्रिका ने सच पूछो तो जैन समाज पर बड़ा उपकार किया है, जो इतने बड़े-बड़े आचार्यों तक के शिथिलाचारों को स्पष्ट करने का साहस दिखाया है। मैं तो इस पत्रिका के संचालन के लिए कोटिश: धन्यवाद देता हूँ और प्रभु से कामना करता हूँ कि वे शतायुषी हों। इस पत्रिका ने कभी भी गलत आरोप नहीं लगाये। आप कोई उदाहरण तो दें। यह तो आचार्य पूज्य शांतिसागर जी का बहुत गुणगान करने वाली पत्रिका है।**

9. जहाँ तक आर्यिकाओं का प्रश्न है, वे यथायोग्य वंदामि की पात्र हैं, पूज्य हैं। परन्तु उनकी निर्ग्रंथ मुनियों के समान साधु परमेष्ठी में गिनती नहीं हो सकती। इसलिए उनकी अष्टद्रव्य से पूजा करना वास्तव में आगमसम्मत नहीं है, उनकी सातभक्ति ही आगमसम्मत है।

10. आपका यह लिखना सर्वथा गलत है कि आचार्य श्री के शिष्य कभी भी महामस्तकाभिषेक में श्रवणबेलगोला नहीं आये। आप शायद भूल गये कि इससे पिछले महामस्तकाभिषेक में 1993 में पूज्य मुनिश्री योगसागर जी आदि आचार्यश्री के शिष्य श्रवणबेलगोला पधारे थे। और इस वर्ष के महामस्तकाभिषेक में भी आर्यिका विज्ञानमति माताजी भी ससंघ पधारी थीं।

11. धामणी में समाधि कराने के लिए अपूर्वसागर जी के गुरुभाई क्यों नहीं आये? इस पर विचार करने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकार हमारा नहीं है। संघ के संचालन का भार आचार्य पर निर्भर होता है। अत: उनके बीच में बोलना हमारा काम नहीं है।

12. जहाँ तक वीर सेवादल का संबंध है, वे श्रेष्ठ स्वयं सेवक हैं। यदि आगमविरुद्ध चलनेवाले शिथिलाचारी साधुओं के कार्य में सेवा देने नहीं गये, तो यह उनकी प्रशंसनीय सूझबूझ मानी जायेगी। **मैं उनके इस कार्य के लिए उन्हें बधाई देता हूँ और उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे भविष्य में भी शिथिलाचारी साधुओं के किसी कार्य में शामिल होकर पाप की अनुमोदना न करें।**

13. आज पूरे भारतवर्ष में पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज का संघ विशाल और आगम के अनुसार चर्या करनेवाला है। इस संघ ने अनुपम जागृति लाने का काम किया है। दक्षिण भारत के जो लोग अभी तक गृहीतमिथ्यात्वी बने हुए थे, उनको आगमसम्मत मार्ग दिखाने का साहस किया है। आज जब दक्षिण भारत के हजारों जैनी भाई शुद्धाम्नाय के अनुसार चल पड़े हैं, तब आपको खीझ क्यों हो रही है? अरे, आप भी मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यक्त्वी बन जाओ। इन शिथिलाचारी साधुओं को छोड़कर अमरकंटक जाकर इस पंचम काल की विभूति के दर्शन तो एक बार कर लो। आपके जनम-जनम के पाप कट जायेंगे।

14. आपने अंतिम पैराग्राफ बहुत गलत दिया है। पू.आ. विद्यासागर जी का संघ केवल राजस्थान, बुंदेलखण्ड, एवं मध्यप्रदेश में ही नहीं है। लगता है कि आपको पूर्ण जानकारी नहीं है। आज महान् आचार्य का संघ झारखंड, छत्तीसगढ़, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आदि सभी राज्यों में भव्य जीवों के अज्ञान अंधकार को नष्ट करने एवं सच्चे धर्म का प्रकाश करने के लिए चातुर्मास कर रहा है। महाराष्ट्र में तथा कर्नाटक में इनकी चर्या देखकर लोग दांतों तले उँगली दबा रहे हैं। क्योंकि अभी तक उन्होंने शिथिलाचारी साधुओं की ही चर्या देखी थी। अब दक्षिण **भारत के जैनी भाइयों ने समझ लिया है कि वास्तव में दिगम्बर साधु तो पूज्य आचार्य विद्यासागरजी के संघ के तथा और कुछ अन्य साधु ही हैं। शेष तो पंचम काल की बलिहारी हैं।** अब दक्षिण भारत का समाज प्रबुद्ध हो उठा है और उसने शुद्धाम्नाय तथा मूल आगमपरम्परा को समझ लिया है। अब इस पंथवाद के फालतू झगड़े में न पड़कर वह सत्य मार्ग अपनाना चाहता है। अत: मेरा अनुरोध है कि ऐसे धोखे से भरे हुए एवं झूठे पम्पलेट निकालकर पूज्य आचार्य संत-शिरोमणि विद्यासागर जी महाराज एवं उनके संघ का अवर्णवाद करना बंद करें। आशा है मेरे इस उत्तर को पढ़कर समाज में फूट डालनेवाले और मिथ्यामार्ग का प्रचार करनेवाले को बुद्धि आयेगी।

'धर्ममंगल' 2.10.2006 से साभार

अभिशाप बना वरदान

बरुवा सागर की बात है- त्यागी श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी दिन के चार बजे लोटा पानी से भरकर शौच के लिए ग्राम से बाहर जा रहे थे। मार्ग में कुछ बालक गेंद खेल रहे थे। उन्हें खेलते देख वर्णीजी के मन में भी गेंद खेलने का भाव हो आया। वे खिलाड़ी बालकों से बोले- "भाई, हमें भी डण्डा और गेंद दो, हम भी खेलेंगे।" एक बालक ने अपना डण्डा दे दिया। गेंद आने पर ज्यों ही वर्णीजी ने डण्डा मारने को घुमाया, तो वह गेंद में न लगकर हाथ से छूटकर पास खड़े एक बालक की आँख में बड़े वेग से लगा और रुधिर-धार बहने लगी।

वर्णीजी हक्के-बक्के रह गये। वे शोकातुर हो गये और शौच भूल गये। झट वापिस घर लौटे। बाईजी ने उन्हें देखा पर वर्णीजी के मुँह से बोल न फूटते थे, किन्तु रोते जाते थे और आँखों में गंगा-जमना बहती जाती थी। इतने में एक बालक वहाँ आया और बाईजी से सब हाल कहा। बाईजी ने वर्णीजी को समझाया और भोजन के लिए कहा, किन्तु वर्णीजी ने उस दिन भोजन न किया और देर तक पश्चात्ताप करते रहे। एक-दो दिन तक वर्णीजी दिन में घर से बाहर तक नहीं निकले। पर धीरे-धीरे बात पुरानी हो गयी। लगभग एक सप्ताह बाद एक दिन वर्णीजी देर से मन्दिर जा रहे थे कि उस बालक की माँ रास्ते में मिल गयी। वर्णीजी घबरा गये, उन्हें डर लगा कि हे भगवान् अब क्या होगा! लेकिन बालक की माँ ने झट से उनके पैर छुए और विनीत शब्दों में बोली कि उसके पुत्र का अंखसूर, जो अनेक औषधियाँ करने पर भी अच्छा न हुआ था, खून निकल जाने से एकदम अच्छा हो गया। आप बड़े उपकारी महात्मा हैं।

वर्णीजी चिन्तन करने लगे कि उदय बड़ी वस्तु है। कहाँ तो शापरूप घटना और कहाँ उसका वरदान-रूप फल। लेकिन तब से फिर वर्णीजी ने कभी वह खेल न खेला और न फिर कभी किसी को अँखसूर निकलवाने का सौभाग्य दिया।

'बोधकथा मंजरी' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतो की आड़ में आत्मघाती खेल न खेलें

डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल, अमलाई

श्रीमान् अजीत टोंग्या, बड़नगर द्वारा प्रेषित 'कुण्डलपुर कोहराम और आचार्य शांतिसागर जी महाराज (पूर्वार्द्ध)' प्राप्त हुआ। आद्योपान्त पढ़ने के बाद लेखक की मूल भावनानुसार यह संकलन-प्रकाशन जैन समाज के कोहराम के जनक के रूप में अनुभूत हुआ। अत: न चाहकर भी लिखने का सहज भाव आया। इस लेखन के पूर्व दो पत्र सम्माननीय श्री टोंग्या जी को भी लिखे जिनका प्रतिउत्तर अभी तक नहीं मिला। यह भी लिखा कि यदि छद्म नाम नहीं होगा, तो प्रतिउत्तर अवश्य आयेगा।

कुण्डलपुर बड़े बाबा के जीर्ण पुराने मंदिर से नव निर्माणाधीन मंदिर में विराजित होने के औचित्य पर लेखक को कुछ भी नहीं करना है, क्योंकि सम्पूर्ण प्रकरण माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है और जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अंतिम निर्णय के पूर्व हस्तक्षेप से इंकार कर दिया हो, तो कोई भी होता कौन है उस बिन्दु पर अपने विचार व्यक्त करे या न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करे। प्रजातंत्र की इस मर्यादा से सभी परिचित हैं। इसके उपरान्त भी यदि कोई कुछ करता है, तो वह स्वेच्छाचारी, अमर्यादित व्यवहार ही होगा।

विद्वान् लेखक श्री अजीत टोंग्या जी ने चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी के परिप्रेक्ष्य में कुण्डलपुर-कोहराम के रूप में अपने विचार व्यक्त किए। इस संबंध में यह स्मरणीय है कि यदि पूज्य आचार्यश्री होते या उनकी कार्य पद्धति/कार्यशैली का अनुसरण करनेवाला सच्चा भक्त होता, तो कुण्डलपुर-कोहराम लिखा ही नहीं जाता। वह न्यायिक मर्यादा का पालन करते हुए माननीय उच्च न्यायालय के निर्णय की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता, जैसा कि आचार्यश्री शांतिसागर जी ने हरिजन-मंदिर-प्रवेश के प्रकरण में किया था। वे स्वयं न्यायाधीश नहीं बने। उनके द्वारा अन्नाहार का त्याग उनकी आत्मशोधन की प्रक्रिया का अंग था, निमित्त न्याय प्राप्ति की भावना थी।

जीर्ण मंदिर का ध्वंस, नव मंदिर का निर्माण, स्थगन आदेश की अवमानना, स्वत्व का स्वरूप, वैध-अवैध कार्य का निर्णय आदि बिन्दु माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष निर्णय हेतु विचाराधीन हैं। इन बिन्दुओं पर टिप्पणी करना निश्चित ही न्यायिक प्रक्रिया पर अविश्वास तो है ही, मलिन मनोवृत्ति के प्रदर्शन का भी सूचक है, जो पक्षपात की विद्यमानता को प्रकाशित करता है। यही कारण है कि **समन्वय-वाणी** के सम्पादक ने विद्यमान प्रकरण में विद्वान् विचारकों एवं जन सामान्य आदि के अपने निजी विचारों को समन्वय-वाणी में प्रकाशित किए तटस्थ भाव से, किन्तु न्यायिक प्रक्रिया से जुड़े बिन्दुओं के औचित्य पर अपना कोई निर्णय व्यक्त नहीं किया और न ही किसी पक्षकार को झूठा, महाझूठा, डाक्टर डाकू, ठगी ठग, मूढ़ता अपलाप, इस सत्य महाव्रती जेसे हीन/ अभद्र शब्दों का ही प्रयोग किया, जबकि अन्य एक पंथ विशेष को समर्पित सम्पादकों ने अपने दोहरे मुखोटे दर्शाकर अपने विवादित और मलिन सोच से समाज को गुमराह किया और अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया।

विद्वान् श्री अजीत टोंग्या ने कुण्डलपुर कोहराम में निम्न बिन्दुओं को उछाला है- पहला पुरातत्त्व के संरक्षण की आड़ में तेरहपंथ और बीसपंथ के बिन्दु के आधार पर समाज को अनिश्चित काल तक के लिए विग्रह-विद्वेष की आग में झोंकना और दूसरा विद्यमान श्रमण संस्था के एक प्रभावी आगमनिष्ठ आचार्य और उसके विशाल संघ को शेष श्रमण धारा से पृथक् करना, तीसरा देश के कानून की आड़ में समूची जैन समाज की निन्दा करना और उसे कानून हंता के रूप में प्रस्तुत करना, चौथे पुरातत्त्व की आड़ में यक्ष-यक्षी की मूर्तियों को लेकर तेरहपंथ के स्थानों/मंदिरों को बीसपंथ का घोषित करवाने की साजिश/कूट रचना करना। यह सर्वविदित है कि भट्टारकों की गद्दी या यक्ष-यक्षी की विद्यमानता बीसपंथ के अस्तित्व की सूचक नहीं होती। विद्वान् लेखक और उसके समर्थक अपने उद्देश्य की पूर्ति में कहाँ तक सफल होते हैं, यह तो समय ही बताएगा किन्तु, यहाँ विचारणीय मुद्दा यह है कि कुण्डलपुर कोहराम के प्रायोजकों को ये काम अपनी दम खम पर करने चाहिए थे। इस उद्देश्य हेतु गृहत्यागी, आत्मसाधना में संलग्न आचार्य/ मुनिराज भगवंतों की प्रतिष्ठा को दाव पर नहीं लगाना चाहिए था।

कहा गया है कि श्रवणबेलगोला में उपस्थित 225 संतों ने इस बात की भर्त्सना की, जिसमें आचार्यश्री वर्द्धमानसागर जी, आचार्यश्री पद्मनन्दीजी सम्मिलित थे। कारण यह है कि उन्हें अंधेरे में रखा गया। लेखक की यह घोषणा या कथन निश्चित ही किसी वीतरागी संत के बारे में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हो सकता। जिनेश्वरी दीक्षाधारी प्रथम तो किसी अनात्मिक कार्यों में अपना उपयोग नहीं लगाते, दूसरा बिना पक्ष-विपक्ष के तथ्यों को जाने अपना निर्णय नहीं देते। आगम के आलोक में प्रतिपाद्य विषय-सामग्री के विषय में प्रतिक्रिया पूछे जाने पर जानकारी अपूर्ण या दुर्भावनायुक्त होती है, तब वह प्रतिक्रिया भी उसी रूप हो जाती है। अत: संतों को ऐसे प्रकरणों में लाना वीतरागी संस्कृति को प्रश्नचिह्नित करना है।

आचार्यश्री वर्द्धमानसागर जी के प्रथम दर्शन करने का सौभाग्य श्रवणबेलगोला में मुझे मिला। श्रमणाचार में यौनाचार, महावीर जन्मभूमि, ज्ञानानुभूति एवं अन्य विषयों पर मेरी तीन बार चर्चा हुई। वे अत्यन्त सुलझे एवं सरल अविवादित प्रकृति के आचार्य हैं। मुझे यह विश्वास करना कठिन है कि वे कसी की पुरजोर भर्त्सना करेंगे और वह भी एक आगमिक वीतरागी आचार्य को लक्ष्य कर। कुण्डलपुर कोहराम के प्रायोजकों को यह भ्रम भी नहीं पालना चाहिए कि श्रवणबेलगोला में उपस्थित संत समूह अपनी आत्मसाधना छोड़कर प्राणों की परवाह किए बिना कुण्डलपुर की ओर कूच करेंगे। यह उनकी मर्यादा/प्रतिज्ञा के प्रतिकूल कार्य है। यह तो संतो की बात है, आज का श्रावक भी अपना हिताहित समझता है। वह कागजी बमों से अप्रभावित अपने में ही व्यस्त है और यदि संतगण वहाँ गये तो उनका स्वागत ही होगा।

विश्वास है कि पुरातत्व की आड़ में 13 और 20 पंथ की भावनाओं को उभाड़कर संत समुदाय में जो विग्रह के बीज बोने का प्रयास किया जा रहा है, वह सफल नहीं हो सकेगा। एक विद्वान् का तो यहाँ तक कहना था कि संतसमुदाय (और विशेषकर एक पंथ के) में व्याप्त शिथिलाचार, आपराधिक कृत्यों की विद्यमानता तथा आगम के प्रतिकूल आचारण की बदनामी से बचने के लिए कुण्डलपुर-कोहराम का अयोजन किया गया। इसके मूलकर्ता परदे के पीछे से खेल खेल रहे हैं और विरोधकर्ता और समाधानकर्ता दोनों भेष बदलकर एक उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न हैं।

सृजनप्रतिभा के धनी डॉ. चिरंजीलालजी बगड़ा ने कुण्डलपुर-प्रकरण में पारदर्शिता की दुहाई देते हुए कुण्डलपुर क्षेत्र कमेटी से अनुरोध किया है कि प्रकरण से संबंधित सभी दस्तावेज समाज के सम्मुख प्रस्तुत करें। समाज तो भारत में बिखरी है। उन्होंने यह नहीं बताया कि कहाँ किस स्थान पर इनका प्रदर्शन किया जाये। आपने अपनी कुण्डलपुर यात्रा में अपनी जिज्ञासा शांत की होगी। विद्वान् सम्पादक ने एक संघ-विशेष को छोड़कर समस्त संघ समुदाय के मौन की ओर संकेत कर मौन की भाषा समझने और विश्वास की कमी का संकेत दिया। उनका यह कथन विरोधाभासी है, जैसा कुण्डलपुर-कोहराम से स्पष्ट होता है।

बिना पक्ष-विपक्ष के गुण-दोषों में उलझे, सर्व पक्षों से मेरा इतना ही अनुरोध है कि हम वीतरागी संतों की आड़ में आत्मघाती खेल न खेलें और प्रस्तुत प्रकरण में माननीय उच्च न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा कर उसका सम्मान करें। इसी में सर्वहित निहित है।

पूज्य आचार्य श्री भरतसागर जी महाराज की श्रद्धांजली सभा का आयोजन

दमोह, (म.प्र.) समस्त नगरवासियों के पुण्यादेय से संत शिरोमणि 108 आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परमप्रभावक शिष्य 108 मुनिश्री अजित सागरजी महाराज एवं 105 एलक श्री निर्भय सागरजी महाराज का पावन वर्षा योग संपन्न हुआ ही था कि दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अडिंगा पारसनाथ से यह जानकारी प्राप्त हुई कि पूज्य आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज के पट्टाचार्य पूज्य आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज का सल्लेखनापूर्वक स्वर्गलोक गमन हो गया है। यह समाचार सुनते ही समस्त नगर के श्रद्धालु भक्त शोक में डूब गये।

परमपूज्य मुनिसंघ के पावन सान्निध्य में शाकाहार उपासना परिसंघ एवं सकल जैन समाज, दमोह द्वारा श्रद्धांजलिसभा का आयोजन किया गया, जिसमें अध्यक्ष जैन पंचायत श्री विमल लहरी, परिसंघ के अध्यक्ष राजेश जैन हिनौती वाले, कुण्डलपुर कमेटी अध्यक्ष संतोष सिंघई, श्री वीरेश सेठ, रतनचंद प्राचार्य, संजीव शाकाहारी, मनीष बजाज राजश्री, सुनील वेजीटेरियन, गिरीश नायक, नवीन निराला, मोतीलाल गोयल, जवाहर जैन पत्रकार आदि की उपस्थिति रही।

राजेश जैन, अध्यक्ष
शाकाहार उपासना परिसंघ, दमोह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आओ एक अभियान चलाएँ

शैलेष जैन शास्त्री

19 नवम्बर 2006 को सर्वऋतु विलास कॉलोनी उदयपुर में पूज्य मुनि-पुंगव 108 श्री सुधासागर जी महाराज के धर्मोपदेश में जैनत्व की रक्षार्थ समाज में संक्रमण की तरह फैल रही रात्रिभोजन की प्रथा को समाज से बहिष्कृत करने का प्रेरणास्पद एवं अनुकरणीय प्रवचन सुनकर जहाँ एक ओर हर्ष हुआ, वहीं दूसरी ओर विषाद भी। विषाद इस बात का कि आज हमारे वीतरागी संतों को कुलाचार पर उपदेश देने को मजबूर होना पड रहा है। फिर भी हर्ष इस बात का है कि पंथवाद एवं मतभेदों से ऊपर एक क्रांति का अलख जगाया गया है। 'सर्वऋतु विलास कॉलोनी की धर्मशाला में रात्रि भोजन नहीं होगा' इस प्रकार का एक प्रस्ताव तत्क्षण ही कमेटी ने पास किया।

पूज्य मुनिश्री ने खेद प्रकट किया कि आज जैन व्यक्ति की शादी की पत्रिका में ऐसा भी देखने में आने लगा है कि 'सूर्यास्त से पहले भी भोजन की व्यवस्था है।' दिनोंदिन हमारे समाज में पंथवाद की बू तेजी से फैलती जा रही है। इसमें ओर राजनैतिक दलों में कोई भी अंतर समझ में नहीं आता। चंद लोग एवं चंद पंडित-विद्वान् अपने आप में एक समूह बनाकर दूसरों को दूसरा समूह मानकर मौका मिलते ही विरोध करने में जी-जान लगा देते हैं। कारण कुछ भी हो, नाम होता है तेरापंथ या बीस पंथ का। महाराजश्री ने जोर देकर कहा कि आज पूजा की थालियों पर हमारे समाज में दंगे हो रहे हैं, केस चल रहे हैं पर भोजन की थाली पर कोई विचार नहीं कर रहा, कोई भी पंथ जैनत्व के सुरक्षार्थ कदम उठाने को तैयार नहीं। रात्रिभोजन जैसा महापाप न तो तेरापंथ को स्वीकार है, न बीसपंथ को, न शुद्ध तेरापंथ को। तब फिर हम इस दिशा में कदम क्यों नहीं उठा रहे हैं? आज **'अहिंसा परमो धर्मः'** सूत्र का संदेश देनेवाली जैन धर्मशालाएँ जमीकंद एंव रात्रिभोजन जैसी महान् हिंसा एवं अश्लील नृत्यों के कार्यक्रमों हेतु दे दी जाती हैं। उन पत्रिकाओं का दर्शन महादुर्लभ हो गया है जिनमें लिखा हो- 'सूर्यास्त से पहले ही भोजन की व्यवस्था हैं।'

अँग्रेजों के शासनकाल में जैन कर्मचारियों को सूर्यास्त से पहले भोजन के लिए अवकाश दे दिया जाता था, पर आज हम स्वयं कह देते हैं कि भाई साहब हमारा तो चलता है ----। रात्रिभोजन न मात्र जैनधर्म में, अपितु जैनेतर धर्मों में भी त्याज्य माना गया है तथा नरक का द्वार बताया गया है।

आज जैनों को जागने की जरूरत है, अन्यथा संस्कृति की पतित अवस्था की कल्पना भी भयावह लगती है। 11 वीं शताब्दी में जैनों की संख्या 15 करोड़ थी, जो घटती हुई आज मात्र 1 करोड में सिमट कर रह गई है। किसी धर्म का पतन इसी प्रकार होता है- समाज में मतभेद एंव मूलसस्कृति अथवा उसके कुलाचार के नाश होने से। जब संस्कृति मृत हो जाती है तब समाज भी जीवित नहीं रह सकता तथा समाज के अभाव में धर्म के अस्तित्व की कल्पना आकाश-कुसुमुवत् व्यर्थ है।

मुझे तो लगता है कि इस क्रांति के लिए यदि भारत-वर्ष के समस्त साधु एक बार संकल्पित हो जायें, तो शायद रात्रिभोजन के सामूहिक आयोजनों के माध्यम से हो रही अहिंसा की बेइज्जती समाप्त हो सकती है, कारण अधिकतर जैन मुनिभक्त हैं। कानजीपंथ के अनुयायियों में सामूहिक रात्रि-भोजन सुनने में नहीं आता है, जो हर जैन को अनुकरणीय होना चाहिए।

जैनदर्शन में रात्रिभोजन भी मांसाहार माना गया है, एक ओर हम मांस निर्यात का, चमड़े की वस्तुओं का विरोध करते हैं दूसरी ओर रात्रि भोजन ---?

प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं कम से कम सामूहिक रूप से रात्रि-भोजन का त्याग करना होगा, धर्मशालाओं में शक्ति के साथ रोक लगानी होगी। एवं बच्चों को जैन संस्कृति से संस्कृत करना होगा। विभिन्न वर्गों की निरंतर वृद्धिंगत संख्या तथा जैनों की ह्रासोन्मुख संख्या प्रमाणित करती है कि समाज से कुलाचार मिटता जा रहा है, फलस्वरूप जैन अन्य वर्गों में परिवर्तित होते जा रहे हैं।

अब भी समय है कि हम निकलंक के खून को याद करें और कम से कम बीच बाजार, बीच चौराहों और जैन धर्मशालाओं में समाज द्वारा किए जा रहे इस सांस्कृतिक विनाश को रोकें तथा अहिंसाधर्म के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करें।

'सामूहिक रात्रिभोजन' शब्द का प्रयोग करने का अभिप्राय यह है कि सामाजिक क्रांति में सामूहिक व्यसन का ही विरोध किया जा सकता है। व्यक्तिगतरूप से तो आत्म प्रेरणा ही कारण हो सकती हैं। इसी संदर्भ में मुझे ये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंक्तियाँ याद आ रही हैं-

भाइयो मानो बुरा मत ये गुरु के बैन हैं।
आपसे ही पूँछता क्या आप सचमुच जैन हैं?

कौन थे क्या हो गये आदर्श हमने खो दिए।
प्यार के गुलशन में हमने घृणा के बीज बो दिए॥
देखकर कौतुक घृणा से दिल हमारे भर रहे।
अब हमारे आचरण बदनाम जिनमत कर रहे॥

पूर्व का इतिहास देखो किस तरह स्थान था।
सत्य संयम का हमें पाकर बडा अभिमान था॥
थी हमारी धाक तब तक पाप हम बोते न थे।
चेक जैनों के टिकिट ट्रेनों में तब होते न थे॥

जिस अदालत में गवाही जैन जज है जानता।
फिर नहीं कोई सुनाई थी यहाँ तक मान्यता॥
अब हमारी मान्यता को मानता ही कौन है?
आपसे ही पूंछता क्या आप सचमुच जैन हैं?

जो हुआ सो हुआ अब तो भाई जैनी बनें।
जाति से ही नहीं केवल, धर्म से भी जैनी बनें॥
घर में छन्ना देखकर जैनी हमें सब जान लें
भूलकर भी रात में न खायें बात इतनी मान लें।
गर्व से फिर कह सकेंगे कर्म से भी जैन हैं॥

के.डी. जैन पब्लिक स्कूल,
मदनगंज-किशनगढ़ (राज.)

समाचार

दिगम्बर जैन डॉक्टरों का सम्मेलन श्रीक्षेत्र सम्मेद शिखर जी में सम्पन्न

"ऑल इंडिया दिगम्बर जैन डॉक्टर्स फोरम" तथा "मुनि श्री १०८ प्रमाणसागर जी वर्षायोग समिति श्री सम्मेद शिखरजी," इनके संयुक्त तत्त्वावधान में, हाल ही में जैनों के परमपावन तीर्थाधिराज सम्मेद शिखरजी में द्वितीय अखिल दिगम्बर जैन डॉक्टरों का सम्मेलन संपन्न हुआ, जिसे आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के शुभाशीष तथा प.पू. १०८ मुनिश्री प्रमाणसागर जी का सान्निध्य प्राप्त था।

प.पू. मुनिश्री ने अपने प्रवचन में कहा- "ध्वजारोहण कर डॉक्टरों ने धर्मध्वजा हाथ में लेने का संकल्प किया है। डॉक्टरों को अपने मरीजों की सेवा को ही धर्म मान उसे मानवतापूर्वक निभाना चाहिए। क्षेत्र की गरीब जनता के स्वास्थ्य सुधार तथा जीवन सुधार के लिए समाज तथा सरकार को मिलकर प्रयास करने चाहिए।"

डॉ. अभय दगडे
कोपरगाँव-४२३ ६०१

तारादेही में ऐतिहासिक धर्मप्रभावना

तारादेही (दमोह म.प्र.) ग्राम में संत शिरोमणि आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज के अनुज्ञावर्ती शिष्य मुनि श्री पुष्पदंतसागर जी महाराज एवं मुनि श्री कुन्थुसागर जी महाराज का चातुर्मास हुआ था। चातुर्मास के दौरान विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक आयोजन होते रहे। चातुर्मास के समापन अवसर पर पूज्य मुनिद्वय के सान्निध्य में 'श्री १००८ सिद्धचक्र महामंडल विधान एवं विश्वशांति महायज्ञ' का विशाल स्तर पर आयोजन किया गया। **इस दौरान पूरे गाँव को दुल्हन की भाँति सजाया गया था, प्रमुख मार्ग झण्डे बैनर व पोस्टरों से लदे हुए थे।**

१ नवम्बर से ८ नवम्बर तक चले इस आयोजन का समापन ८ नवम्बर को विशाल रथयात्रा के पश्चात् हुआ।

विक्रम चौधरी

शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल सम्मानित

सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित रतनचन्द भारिल्ल के पुत्र युवा उद्यमी श्री शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर को इन्दिरा गाँधी प्रियदर्शिनी पुरस्कार २००६ से सम्मानित किया गया।

इससे पूर्व यह पुरस्कार मदर टेरेसा जैसी विश्वप्रसिद्ध अनेक हस्तियों को मिल चुका है।

श्री भारिल्ल अपने करीब ३० हजार व्यावसायिक सहयोगियों के साथ देश भर में स्वतंत्र उद्यमिता एवं नैतिक जागरण के लिए कार्यरत हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

1. जिज्ञासा - अनाहारक जीव कौन-कौन होते हैं?

समाधान - इस प्रश्न के समाधान के लिये सबसे पहले हमको अनाहारक किसे कहते हैं, यह जानना आवश्यक है। सर्वार्थसिद्धि टीका (2/30) में अनाहारक की परिभाषा इस प्रकार कही है- **'त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्य-पुद्गलग्रहणमाहारः। तदभावादनाहारकः।' अर्थ**- तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलवर्गणाओं का ग्रहण आहार है और उसके अभाव से अर्थात् ऐसी वर्गणाओं को ग्रहण न करने वाला अनाहारक है। अनाहारक के संबंध में श्री षट्खंडागम (1/177) में इस प्रकार कहा है- **अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गहगइसमावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घादगदाणं अजोगिकेवली सिद्धा चेदि।**

अर्थ - विग्रहगति को प्राप्त, मिथ्यात्व, सासादन तथा अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवाले जीव एवं समुद्घातगत केवली इन चार गुणस्थानवाले जीव, अयोगकेवली एवं सिद्ध जीव अनाहारक होते हैं।

भावार्थ - पहले, दूसरे तथा चौथे गुणस्थान वाले जीव (तीसरे गुणस्थान में मरण नहीं होता) यदि ऋजुगति से गमन कर एक समय में ही जन्म ले लेते हैं, तो अनाहारक अवस्था को प्राप्त नहीं होते। यदि एक मोड़ेवाली गति से जाकर जन्म लेते हैं, तो उनको विग्रहगति में दो समय लगेंगे। उनमें से प्रथम समय में अनाहारक तथा द्वितीय समय में जन्म ले लेने से आहारक होते हैं। इसी तरह यदि दो या तीन मोड़ेवाली गति से जायें, तो प्रथम दो या तीन समय तक अनाहारक तथा अंतिम समय में आहारक होते हैं। केवली-समुद्घात अवस्था में, प्रथम समय दंड समुद्घात में औदारिक काययोग तथा द्वितीय समय कपाट समुद्घात में औदारिकमिश्र काययोग होने से आहारक होते हैं, परन्तु तीसरे और चौथे समय में कार्मण काययोग होने से अनाहारक होते हैं। फिर लौटते समय पाँचवें समय में कार्मण काययोग होने से अनाहारक होते हैं। शेष समयों में आहारक होते हैं। अयोगकेवली एवं सिद्ध भगवान् सदा अनाहारक ही रहते हैं।

2. जिज्ञासा - ब्रह्मचर्याणुव्रत का एक अतिचार 'परविवाहकरण' है। इसे स्पष्ट करें।

समाधान - कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा 338 की टीका में इस प्रकार कहा है-

''स्वपुत्रपुत्र्यादीन् वर्जयित्वा अन्येषां गोत्रिणां मित्रस्व-जनपरजनानां विवाहकरणं अन्यविवाहकरणं।''

अर्थ - अपने पुत्र-पुत्री आदि को छोड़कर अन्य गोत्र-वालों के, मित्र, स्वजन, परजनादिकों के पुत्र-पुत्री आदि का विवाह करना, अन्य (पर) विवाह-करण नामक अतिचार है।

सागारधर्मामृत (4/58) की टीका में इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है- (टीका पं. कैलाशचंद्र जी) ''परविवाह करण अर्थात् अपनी संतान से अतिरिक्त दूसरों की संतान का कन्याफल की इच्छा से अथवा पारस्परिक स्नेह के होने से विवाह कराना। जब स्वदारसंतोषी अपनी स्त्री के सिवाय अन्य में मनवचनकाय से मैथुन न करूँगा, न कराऊँगा, ऐसा व्रत लेता है, तब मैथुन का कारण जो अन्यविवाहकरण है उसका प्रतिषेध हो ही जाता है। किन्तु वह ऐसा समझता है कि मैं तो मात्र विवाह करा रहा हूँ, मैथुन तो नहीं कराता हूँ, इस प्रकार व्रत की सापेक्षता होने से अतिचार है।''

शंका - परविवाहकरण की तरह अपनी संतान का विवाह करने में भी तो उक्त दोष लगता है?

समाधान - यहा तो ठीक है, किन्तु गृहस्थ यदि अपनी कन्या का विवाह न करें, तो कन्या स्वच्छंदचारिणी हो जाये ... किन्तु यदि कुटुंब की चिन्ता करनेवाला कोई भाई वगैरह हो, तो अपनी संतान का भी विवाह न करने का नियम लेना ही श्रेष्ठ है।

उपर्युक्त प्रकरणों से स्पष्ट है कि विवाह कराना, एक प्रकार से विवाह करनेवाले दम्पत्तियों के लिये मैथुन के साधन जुटाना है, इसलिये निषिद्ध है (आ. सुपार्श्वमति जी कृत टीका)। अतः ब्रह्मचर्याणुव्रती को अपने अतिरिक्त अन्यों के विवाहसंबंध तय कराना, उनकी शादी में शामिल होना, उनको आशीर्वाद देना या प्रेरित करना, उचित नहीं है।

3. प्रश्न - क्या आर्यिका का अकेली विहार करना आगम सम्मत है?

समाधान- इस प्रकरण में आगम के निम्न प्रसंग विचारणीय हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1. मूलाचार प्रदीप में इस प्रकार कहा है-

यतो यथात्र सिद्धान्नं भोक्तुं सुखेन शक्यते।
तथा चास्वामिकां नारीं स्वाश्रमे स्वयमागताम्॥ 2303॥
अतो जातु न विद्येत क्वचितकाले निजेच्छया।
एकाकिन्यार्यिकायाश्च विहारो गमनादिकः॥ 2304॥

अर्थ - जिस प्रकार पकाया हुआ भात आसानी से खाया जा सकता है, उसी प्रकार बिना स्वामी की स्त्री यदि स्वयं अपने आश्रम में या घर में आ जाय, तो वह आसानी से भोगी जा सकती है। इसलिये अकेली आर्यिका को अपनी इच्छानुसार किसी भी समय विहार और गमन आदि कभी नहीं करना चाहिये।

2. श्री आचारसार में इस प्रकार कहा है-

द्व्याद्याः समं वसन्त्यार्या गृहस्थासंकराश्रये।
तद्‌गृहानतिदूरातिसमीपेऽवद्यवर्जिते॥ 2/82॥

अर्थ - गृहस्थों के घर से अत्यन्त निकट भी नहीं और अत्यन्त दूर भी नहीं, सावद्यरहित गृहस्थों से अमिश्रित गृह में दो आदि के साथ आर्यायें रहती हैं।

भावार्थ- जो असंयमी जनों के आवास से रहित हो, श्रावकों के घर से अत्यंत दूर भी नहीं और अत्यन्त समीप भी नहीं हो तथा जो सर्वसावद्य से रहित हो, ऐसे स्थान में दो तीन आदि आर्यिकाएँ मिलकर रहें। अकेली नहीं रहें। आर्यिकाओं का अकेला रहना, आगम में निषिद्ध है। (टीका आ. सुपार्श्वमती जी)।

3. श्री मूलाचार में इस प्रकार कहा है-

तिण्णि व पंच व सत्त व अज्जाओ अण्णमण्णरक्खाओ।
थेरीहिं सहंतरिदा भिक्खाय समोदरंति सदा॥ 194॥

अर्थ - तीन या पाँच या सात आर्यिकाएँ आपस में रक्षा में तत्पर होती हुईं वृद्धा आर्यिकाओं के साथ मिलकर हमेशा आहार के लिये निकलती हैं। **आचारवृत्ति का तात्पर्य**-तात्पर्य यह है कि आर्यिकाएँ देववंदना, गुरुवंदना, आहार-विहार-नीहार आदि किसी भी प्रयोजन के लिये बाहर जावें, तो दो चार आदि मिलकर तथा वृद्धा आर्यिकाओं के साथ होकर ही जायें। (टीका आ. ज्ञानमति जी)

उपर्युक्त सभी आचारग्रंथो के अनुसार आर्यिका का अकेला रहना या अकेले बिहार करना आगमसम्मत नहीं है।

4. जिज्ञासा - पूजा खड़े होकर करनी चाहिए या बैठकर?

समाधान - पूजा तो खड़े होकर ही करना उचित है। यदि शक्ति न हो या अस्वस्थता हो, तो अलग बात है। भगवान् की विनय तो खड़े होकर पूजा करने में ही है। इस संबंध में कुछ आगम प्रमाण इस प्रकार हैं -

1. श्री आदिपुराण पृष्ठ 561 पर इस प्रकार कहा है-

उत्थाय तुष्ट्या सुरेन्द्राः स्वहस्तैः,
जिनस्याङ्घ्रिपूजां प्रचक्रुः प्रतीताः।

अर्थ - सम्यग्दृष्टि सुरेन्द्रों ने अत्यन्त प्रमोदपूर्वक खड़े होकर अपने हाथों से भगवान् के चरण कमलों की पूजा की।

2. श्री मूलाचार में इस प्रकार कहा है -

चतुरंगुलंतर पादो पडिलेहिय अंजलीकयपसत्थो।
अव्वाखित्तो वुत्तो कुणदि य चउवीसत्थयं भिक्खू॥ 575॥

अर्थ - चार अंगुल अन्तराल से पाद को करके, प्रतिलेखन करके, अंजलि को प्रशस्त जोड़कर एकाग्रमना हुआ भिक्षु, चौबीस तीर्थंकर का स्तोत्र करता है।

आचारवृत्ति- पैरों में चार अंगुल का अंतर रखकर स्थिर अंगकर जो खड़े हुये हैं .... (यहाँ मुनियों को भी खड़े होकर ही वंदना करने का विधान किया है।)

3. नित्य देवपूजा विनय पाठ पढ़कर प्रारंभ की जाती है। उसमें सर्वप्रथम यह पढ़ा जाता है, "इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।"

4. श्री हजारीलालकृत पूजन-स्तवन में इस प्रकार कहा है-

"मैं स्तवों तुम सम्मुख ठाड़, यातें पाप सकल परिहरें।"

5. पुण्याश्रव कथाकोष में इस प्रकार कहा है-

तदा गोपालकः सोऽपि, स्थित्वा श्री मज्जिनाग्रतः।
भो सर्वोत्कृष्ट मे पद्मं, ग्रहाणेदमिति स्फुटम्॥ 15॥

अर्थ- तब उस ग्वाले ने श्री जिनेन्द्रदेव के आगे खड़े होकर एक बड़ा कमल समर्पित किया।

6. श्री धर्म संग्रहश्रावकाचार में कहा है-

स चाद्यं पीठमारुढस्त्रि परीत्य कृतांजलिः।
पूजा द्रव्यमुपानीय, भक्त्या स्तौत्यभिमुखम्॥ 33॥

अर्थ- राजा श्रेणिक आद्य पीठ पर चढ़कर भगवान् की तीन प्रदक्षिणा देकर हाथ जोड़कर सामने खड़े होकर, पूजा का द्रव्य चढ़ाते हुये।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि भगवान् के समक्ष विनयपूर्वक खड़े होकर पूजा करना ही आगम-सम्मत है।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-28 2002 (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यश्री विद्यासागर जी के चरण जबलपुर (म.प्र.) की धरती पर

जबलपुर 11 नवम्बर 2006। महान् संत आचार्यश्री विद्यासागर जी सुबह जैसे ही बिलहरी से प्रस्थित हुए, वैसे ही उनके भ्रमणपथ का अनुमान लगाकर पिसनहारी मढ़िया तक का रास्ता आतुर जनसमुदाय से भर गया। स्थान-स्थान पर नमन करता जनसमूह उपस्थित था और जैसे ही वे आगे बढ़ते, जनसमूह विपुल जनसागर बनता गया। आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के कोमल चरण आज सुबह 6बजे ग्राम बिलहरी से जबलपुर की ओर बढ़े।

मुनिश्री के दर्शन करने सड़क के दोनों और श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहा। 45 मुनियों के साथ आचार्यश्री जैसे ही पेंटीनाका पहुँचे श्वेताम्बर जैन समाज द्वारा उनका भव्य स्वागत किया गया। गोरखपुर पहुँचने पर सिख समाज के सदस्यों ने उनका भावभीना अभिनदंन किया। नागरिकों ने जगह-जगह स्वागत द्वारा बनाए और उनकी अगवानी की। आचार्यश्री के ससंघ त्रिपुरी चौक पहँचने पर आदर्शमति माता जी तथा उनके संघ द्वारा आगवानी की गई। आचार्यश्री के पिसनहारी की मढ़िया पहुँचते ही उनका भव्य स्वागत किया गया। जयकारों से संपूर्ण वातावरण में महातीर्थ पिसनहारी की मढ़िया में श्रद्धालु नागरिकों का विशाल समुदाय उपस्थित था। हर कोई आचार्यश्री के दर्शनों के लिए विह्वल था। मढ़िया जी में विश्राम के पश्चात् सुबह 10 बजे आचार्यश्री ने श्री ब्राह्मी आश्रम की बहनों तथा प्रतिभास्थली की बहनों से आहार लिया।

आत्मपरीक्षण से सर्वांगीण विकास

12 नवम्बर 2006को पिसनहारी की मढ़िया, जबलपुर (म.प्र.) में आचार्यश्री का प्रवचन

प्रतीक्षा शब्द हमें बहुत कुछ सोचने का समय देता है और उस प्रतीक्षा के समय में हमारा ध्यान न जाने किस-किस ओर जाता है, हम जब अतीत की ओर देखते हैं तो बीच में प्रतीक्षा आ जाती है।

आपको यदि अपना सर्वांगीण विकास करना है तो बगैर प्रतीक्षा किये एक के बाद एक कदम संयम के साथ आगे बढ़े। जल्दी-जल्दी प्रगति करनेवाला व्यक्ति सो नहीं सकता। आँधी व तूफान में भी वह जागृत रहता है, वह दूर की किरणों के माध्यम से भी अपने जीवन को सुंदर बना सकता है।

हमें किसी की प्रतीक्षा की नहीं निरीक्षण की आवश्यकता है। आप अपनी आत्मा का, अपने कार्य का निरीक्षण करें, अपने कर्त्तव्य का पालन करें। इच्छा शब्द अपने आप में सोचने के लिये बाध्य कर देता है कि हर व्यक्ति सुख की आकांक्षा करता है, लेकिन उसे सुख नहीं मिलता।

इच्छा तो वह करता है, इच्छा की पूर्ति नहीं होती, लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं है कि वह आकांक्षा करना छोड़ दे, लेकिन वह उस सुख की प्रतीक्षा करता है, जो उसे कर्मठ पुरुषार्थी भी बनाती है। उन्होंने कहा कि मन में बहुत से भाव, संवेदनाएँ होती हैं, मन को वर्तमान की तरफ नहीं वर्धमान की तरफ ले जाने की आवश्यकता है। इसके लिये कुछ आयाम अलग से करने पड़ते हैं। आत्मा क्यों डूब रही है, क्योंकि आकांक्षाएँ तैर रही हैं। आत्मा कभी भी समाप्त नहीं होती, आगे भी समाप्त नहीं होगी। अनादिकाल से इस बात को हर व्यक्ति जानता है, लेकिन हम स्वभावगत बातों के सामने आत्मा को पीछे छोड़ देते हैं। प्रतीक्षा की ओर चले जाओगे तो पुरुषार्थ कम हो जाएगा।

प्रतीक्षा हमेशा सिर दर्द की सम्पादिका है। अत: हर क्षण को कार्य में पुरुषार्थ के साथ उपयोग करें। परीक्षण अथवा निरीक्षण करें। काल को जब गौण करोगे तभी आपको सुख की अनुभूति होगी। आचार्यश्री ने कहा आज का युग धर्मयुग से आगे बढ़ गया है, इसलिए आज प्रतीक्षा की नहीं आत्मा के निरीक्षण की आवश्यकता है।

मोह रहित होने से ज्ञान अनुकूल हो जाता है

ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, किन्तु जब तक संयम का सहारा नहीं मिलता, ज्ञान ही दु:ख का कारण बनता है, मोहरहित होने से ज्ञान अनुकूल हो जाता है और ज्ञान जब समीचीन हो जाता है, तो जीव भगवान तुल्य हो जाता है। और जब ज्ञान विकृत हो जाता है तो जीव को श्वान बना देता है। आचार्यश्री ने कहा कि भारतीय संस्कृति में बुद्धि को जागृत करने के लिए बाल्यावस्था में बालक हो या बालिका, उसके कान छिदवाए जाते हैं, जिसके पीछे मुख्य उद्देश्य यही होता है कि कान में जब कुण्डल पहनाए जाते हैं और कदम रखने पर जब वे हिलते हैं, तो उससे बुद्धि का विकास होता है। भगवान महावीर जब तक दीक्षित नहीं हुए थे, तब तक उनके कानों में कुण्डल रहते थे। बचपन में गुरु जी भी छात्र-छात्राओं के कान खींचते हैं, इसके पीछे मुख्य वजह यही होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UPHIN/2006/16750

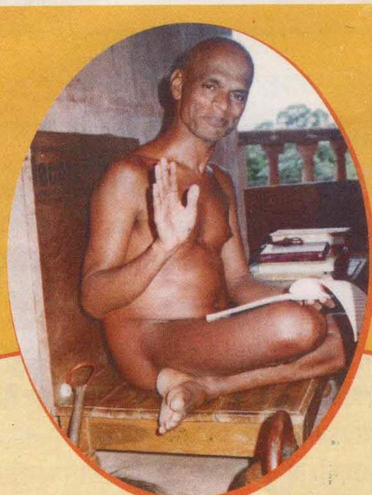

● मुनि श्री योगसागर

विमलनाथ स्तवन

(वसन्ततिलका छन्द)

1

हैं हाथ जोड नतमस्तक नम्रता से।
आराधना कर रहे लवलीनता से॥
वांछा रही न मन में सब ये पुकारे।
तीर्थंकरा विमलनाथ भवाब्धि तारे॥

2

मैं पुण्यहीन कुछ अर्पण को नहीं है।
क्या अर्चना कर सकूँ यह वेदना है॥
ना ज्ञान है वचन से गुणकीर्ति गावे।
यह चित्त को सतत आकुलता सतावे॥

3

मैं भक्ति-मानस-सरोवर-नीर लाया।
ये गंधयुक्त स्तव-पुष्प मनोज्ञ लाया॥
यह ज्योति कीर्तन-सुदीप प्रकाशकारी।
मेरे अनादि अघ को छिन में निवारी॥

4

त्रैलोक्य-वैद्य भव-रोग निवारते हैं।
है शुद्ध औषध अमोघ निरामयी॥
श्रद्धा-समेत उर से जिसने लिया है।
आरोग्य वर्धक रहा सुख-चेतना है॥

5

आनन्द-कुम्भ-मुख-मण्डल को निहारो।
क्या विश्व में तव समान न रूप प्यारो॥
पर्याय तो ध्रुव नहीं उसको तजो रे।
आत्मा सही परम रत्न अपूर्व प्यारे॥

अनन्तनाथ स्तुति

(द्रुतविलम्बित छन्द)

1

उदय ध्यान-दिवाकर रश्मियाँ।
अघ अनन्त समुद्र सुखा दिया॥
विविध-रतन-अनन्त सु पा गये।
उन अनन्त जिनेश नमोऽस्तु ये॥

2

मदन शक्ति-प्रकोप विलीन है।
निज सरोवर में अवगाह है॥
परम शीतल से परिपूर्ण है।
सकल द्वन्द्व न हर्ष विषाद है॥

3

परम निर्मल केवलज्ञान है।
जगत ही रवि-चन्द्र तुम्हें कहे॥
त्रिजग ही झलके निजज्ञान में।
परम निश्चय से निज सौख्य में॥

4

हृदय पंकज दर्शन से खिले।
स्तवन से मद-मोह सभी गले॥
चरण अर्चन से मन शान्त है।
जगत् में नर जीवन धन्य है॥

5

यह अकिंचन द्वार निहारता।
न मणि कंचन वैभव चाहता॥
हृदय में उठती यह भावना
भव भवान्तर में करूँ वन्दना॥

प्रस्तुति - रतनचन्द्र जैन

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। **संपादक :** रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org